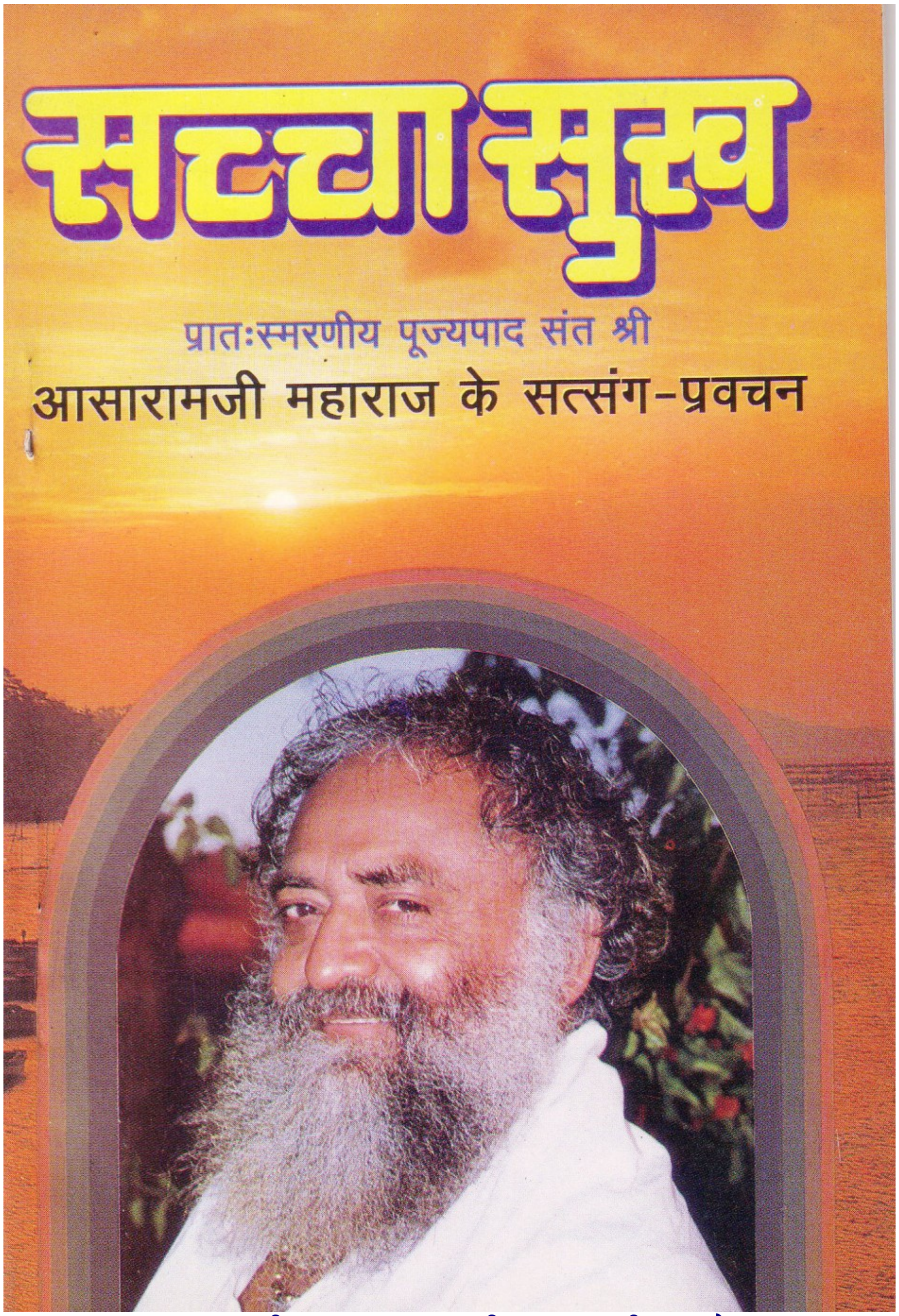


प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग–प्रवचन

सच्चा सुख

पूज्य बापू का पावन सन्देश

हम धनवान होंगे या नहीं, चुनाव जीतेंगे या नहीं इसमें शंका हो सकती है परंतु भैया! हम मरेंगे या नहीं, इसमें कोई शंका है? विमान उड़ने का समय निश्चित होता है, बस चलने का समय निश्चित होता है, गाड़ी छूटने का समय निश्चित होता है परंतु इस जीवन की गाड़ी छूटने का कोई निश्चित समय है?

आज तक आपने जगत में जो कुछ जाना है, जो कुछ प्राप्त किया है.... आज के बाद जो जानोगे और प्राप्त करोगे, प्यारे भैया! वह सब मृत्यु के एक ही झटके में छूट जायेगा, जाना अनजाना हो जायेगा, प्राप्ति अप्राप्ति में बदल जायेगी।

अतः सावधान हो जाओ। अन्तर्मुख होकर अपने अविचल आत्मा को, निजस्वरूप के अगाध आनन्द को, शाश्वत शांति को प्राप्त कर लो। फिर तो आप ही अविनाशी आत्मा हो।

जागो.... उठो.... अपने भीतर सोये हुए निश्चयबल को जगाओ। सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को अर्जित करो। आत्मा में अथाह सामर्थ्य है। अपने को दीन-हीन मान बैठे तो विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं जो तुम्हें ऊपर उठा सके। अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये तो त्रिलोकी में ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके।

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है। अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं। तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधना-काल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहार-काल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ। दत्तचित्त होकर हर कोई कार्य करो। सदा शान्त वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो। विचारवन्त एवं प्रसन्न रहो। जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो। सबसे स्नेह रखो। दिल को व्यापक रखो। आत्मनिष्ठ में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

निवेदन

पूज्यश्री के सरस सुबोध एवं श्रुति–मधुर वचनामृतों के इस अनुपम संकलन को पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है।

यह आत्मज्ञान की उच्च साधना विहंगमार्ग कहलाती है। आत्मज्ञान के प्यासे, विवेक–वैराग्यवान साधकों के लिए यह पुस्तक वायुयान का काम करेगी। पूज्यश्री की आत्मानुभूति से छलकते ये वचन देह की आसक्ति और मानसिक दुर्बलताएँ छुड़ाकर आत्म–सिंहासन पर बिठा देते हैं।
अतः इस पावन पुस्तक को अपने साथ रखें, बार–बार पढ़ें और धन्य–धन्य हो जाएँ.....।

विनीत

श्री योग वेदान्त सेवा समिति

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

सच्चा सुख

चैतन्यस्वरूप परमात्मा की सत्ता से हमारी चित्तकला स्फुरित होती है। वह चित्तकला या संवित्, वृत्ति, स्फुरणा या धारा हिता नाम की नाड़ी में जाकर स्वप्न का संसार बना लेती है। वह संवित् सुन्नता की अवस्था में गहरी नींद में बदल जाती है। उस संवित् के उदगम स्थान अन्तर्यामी आत्मा–परमात्मा की प्राप्ति, उसका बोध या ज्ञान अगर किसी को तीन मिनट के लिए भी प्राप्त हो जाय तो उसे दुबारा गर्भवास का दुःख नहीं भोगना पड़ेगा, माता के गर्भ में नहीं जाना पड़ेगा। वह मुक्तात्मा हो जायगा।
चैतन्य सत्ता से स्फुरित संवित् जगत की आसक्ति करती है और राग सहित हो जाती है। नश्वर पदार्थों का राग, नश्वर देह की आस्था अगर शाश्वत के संगीत को सुनकर, शाश्वत के ध्यान को पाकर, शाश्वत की मधुरता का एहसास कर ले, साधक रागरहित हो जाय तो भोग योग में बदल जाएगा, स्वार्थ सेवा में बदल जाएगा, चिन्ता निश्चिन्तता में बदल जायगी, मृत्यु अमरता बदल जाएगी, जीव ब्रह्म हो जायेगा। केवल रागरहित होने से यह लाभ हो जाएगा।

राग के कारण जीव जन्म मरण के चक्कर में पड़ता है, राग के कारण जीव पापाचर करता है, राग के कारण जीव नाना प्रकार की योनियों में भटकता है। रागरहित हुए बिना भोग योग में नहीं बदलता, स्वार्थ सेवा में नहीं बदलता । राग मिटाने के लिए जगत की नश्वरता का विचार करके, शरीर की क्षणभंगुरता का विचार करके चित्त में वैराग्य को उपजाना चाहिए।

दूसरा उपाय हैः भगवान में इतना राग करो, उस शाश्वत चैतन्य में इतना राग करो कि नश्वर का राग स्मरण में भी न आये। शाश्वत के रस में इतना सराबोर हो जाओ, राम के रस में इतना तन्मय हो जाओ कि कामनाओं का दहकता हुआ, चिंगारियाँ फेंकता हुआ काम का दुःखद बड़वानल हमारे चित्त को न तपा सके, न सता सके।

चित्त में चैतन्यस्वरूप परमात्मा हर समय हमेशा स्थित है लेकिन नश्वर राग के कारण उसी चैतन्यस्वरूप परमात्मा की सत्ता लेकर संवित् बहिर्मुख होती है और जाग्रत जगत की इच्छाओं में भटकती है। जब वह संवित् हिता नाम की नाड़ी में आती तब स्वप्न का जगत दिखाती है। वही संवित् जब कुण्ठित हो जाती है तब सुषुप्ति आती है।

अगर वह संवित् परम तत्त्व का चिन्तन करे, ध्यान करे, परम तत्त्व के जानकार सत्पुरूषों का सान्निध्य–सेवन करे तो वह संवित् क्रमशः अपने उदगम स्थान चैतन्यस्वरूप आत्मा–परमात्मा में अवस्थित हो जाए। इस प्रकार अपने मैं पने के उदगम स्थान में संवित् अगर तीन मिनट के लिए भी स्थित हो जाए तो फिर उसे जीव होकर जन्म लेना नहीं पड़ता, माता के गर्भ में आना नहीं पड़ता।
चन्द्रमा में अमृत बरसाने की सत्ता जहाँ से आती है वही चैतन्य तुम्हारे दिल को और तुम्हारी नस–नाड़ियों को, तुम्हारी आँखों को और मन–बुद्धि को स्फुरणा और शक्ति देता है। जो चैतन्य सत्ता सूर्य में प्रकाश और प्रभाव भरती है, चन्द्रमा में चाँदनी भरती है वही चैतन्य सत्ता तुम्हारे हाड़–मांस के शरीर में भी चेतना, प्रेम और आनन्द की धारा बहाती है।

जैसे पृथ्वी में रस है। उसमें जिस प्रकार के बीज बो दो उसी प्रकार के अंकुर, फल–फूल निकल आते हैं। उसी प्रकार वह चैतन्य राम रोम–रोम में बस रहा है। उसके प्रति जैसा भाव करके चिन्तन, स्मरण होता है वैसा प्रतिभाव अपने आप मिलता है। वह रोम–रोम में बसा है इसलिए उसका नाम राम है। उसका चिन्तन करने से वह ताप, पाप, संताप और थकान को हर लेता है इसलिए उसका नाम हरि है। सर्वत्र वह खुद ही खुद है इसलिए उनका नाम खुदा है। वह कल्याणस्वरूप है इसलिए

उसका नाम शिव है।

हम उसी परम शिव का ध्यान करेंगे जो अर्धकलाधारी चन्द्रशेखर होकर चमकते हैं। हम उसी नारायण का चिन्तन करेंगे जो भगवान पुण्डरीकाक्ष वैकुण्ठाधिपति होकर वैकुण्ठ को प्रकाशमान करते हैं। हम उसी अन्तर्यामी प्रभु का स्मरण करेंगे जो चन्द्रमा के द्वारा तमाम औषधि–वनस्पतियों में अपनी करूणा–कृपा बरसाकर मानव जाति को निरोगता का वरदान देते हैं। उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा की, उस मधुर संवित् की उपासना करते–करते उसे प्यार करेंगे।

जो तुम्हारे दिल को चेतना देकर धड़कन दिलाता है, तुम्हारी आँखों को निहारने की शक्ति देता है, तुम्हारे कानों को सुनने की सत्ता देता है, तुम्हारी नासिका को सूँघने की सत्ता देता है और मन को संकल्प–विकल्प करने की स्फुरणा देता है उसे भरपूर स्नेह करो। तुम्हारी 'मैं....मैं...' जहाँ से स्फुरित होकर आ रही है उस उदगम स्थान को नहीं भी जानते हो फिर भी उसे धन्यवाद देते हुए स्नेह करो। ऐसा करने से तुम्हारी संवित् वहीं पहुँचेगी जहाँ योगियों की संवित् पहुँचती है, जहाँ भक्तों की भाव संवित विश्रान्ति पाती है, तपस्वियों का तप जहाँ फलता है, ध्यानियों का ध्यान जहाँ से सिद्ध होता है और कर्मयोगियों को कर्म करने की सत्ता जहाँ से मिलती है।

'योगवाशिष्ठ' एक ऐसा अदभुत ग्रन्थ है जिसको बार–बार विचारने से आदमी को यहीं मुक्ति का अनुभव हो जाता है। उसमें वक्ता भगवान वशिष्ठजी हैं और श्रोता भगवान रामचन्द्रजी हैं। वशिष्ठजी महाराज हिमालय में अपनी संवित् को अन्तर्मुख किये हुए थे और भगवान चन्द्रशेखर माता पार्वती के साथ आकाश मार्ग से आये और वशिष्ठजी से मिले।

धन में, वैभव में और बाह्य वस्तुओं में एक आदमी दूसरे आदमी की पूरी बराबरी नहीं कर सकता। जो रूप, लावण्य, पुत्र, परिवार, पत्नी आदि एक व्यक्ति को है वैसे का वैसा, उतना ही दूसरे को नहीं मिल सकता। लेकिन परमात्मा जो वशिष्ठजी को मिले है, जो कबीर को मिले हैं, जो रामकृष्ण को मिले हैं, जो धन्ना जाट को मिले हैं, जो राजा जनक को मिले हैं वे ही परमात्मा सब व्यक्ति को मिल सकते हैं। शर्त यह है कि परमात्मा को पाने की इच्छा तीव्र होनी चाहिए।

परमात्म–प्राप्ति की इच्छा तीव्र न होने के कारण संसार की इच्छा जोर पकड़ती है। संसार की इच्छाएँ जीव को नचाती रहती हैं और राग पैदा करती रहती हैं। वस्तुओं में राग बढ़ता है उसे लोभ कहते हैं, व्यक्ति में राग बढ़ता है उसे मोह कहते हैं। राग ही लोभ और मोह बना देता है, राग काम बना देता है। राग ही क्रोध को जन्म देता है। इच्छित वस्तु पाने में किसी ने विघ्न डाला और वह अपने से छोटा है तो उस पर क्रोध आयगा, वह अपनी बराबरी का है तो उससे द्वेष होगा और अपने से वह बड़ा है तो उससे भय होगा। राग से ही क्रोध, द्वेष और भय पैदा होते हैं। राग से ही मोह पैदा होता है और राग से ही काम पैदा होता है। रागरहित हुए बिना कोई व्यक्ति परम पद को नहीं प्राप्त कर सकता। राग रहित होना है तो क्या करना चाहिए?

नश्वर वस्तुओं का राग मिटाने के लिए शाश्वत में राग बढ़ा दो। शाश्वत में राग बढ़ाने से रागरहित अवस्था आ जाएगी। बिना रागरहित हुए भोगी योगी नहीं हो सकता, स्वार्थ सेवा में नहीं बदलता, भक्त भगवान को नहीं मिल पाता। रागरहित होने से भोगी योगी बन जाता है, स्वार्थी सात्विक सेवक बन जाता है और भक्त भगवान से मिल जाता है, जीव ब्रह्म से मिल जाता है। केवल राग के कारण ही जीव की दुर्दशा है। जीव रागरहित हो गया तो वह योगी हो गया, वह भक्त हो गया, वह ज्ञानी हो गया, वह मुक्त हो गया।

राग की वस्तु मिलने से राग मिटता नहीं, राग गहरा होता है। राग मिटाया जाता है अन्तर्मुखता से। आपकी संवित् कहो, धारा कहो, स्फुरणा कहो, वृत्ति कहो, संकल्प कहो जो कुछ कहो, वह

स्फुरणा जहाँ से उठती है उस चैतन्य–सागर में पुनः पहुँच जाय तो राग मिट जाय।

चैतन्य से जब स्फुरणा उठती है और इन्द्रियों के द्वारा बहिर्मुख होती है तब जाग्रत अवस्था आती है। वह स्फुरणा हिता नाम की नाड़ी में घूमती है तब स्वप्न की दुनिया दिखाती है। वही स्फुरणा जब कुण्ठित हो जाती है तब सुषुप्ति अवस्था आती है। वही स्फुरणा जब अपने उदगम स्थान चैतन्य में लीन होती है उस अवस्था को तुर्यावस्था कहते हैं। तुर्यावस्था साक्षात्कार की अवस्था है, ईश्वर–प्राप्ति की अवस्था है, मुक्ति की अवस्था है। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये संसार हैं और बदलने वाली अवस्थाएँ हैं, दुःखद अवस्थाएँ हैं। यहाँ का दुःख तो दुःख है लेकिन हम लोग जिसे सुख मानते हैं वह भी दुःख से भरा है। यहाँ का शत्रु तो शत्रु है ही लेकिन जिसे हम मित्र समझते हैं वह भी कभी न कभी शत्रुता से भरा हुआ दिखेगा। जितना मित्र में राग अधिक होगा उतना वह मित्र कभी न कभी जरूर ठोकर मारेगा। जितना धन में राग अधिक होगा उतना वह धनवान धन के कारण अधिक दुःखी रहेगा। जितना राग परिवार में अधिक होगा, परिवार के कारण ही वह अधिक दुःखी रहेगा। जितना राग देह में होगा उतना देह के कारण चिन्तित रहेगा।

राग जहाँ भी आपने लगाया वहाँ दुःख दिये बिना नहीं छोड़ेगा। भगवान में राग लगायें तो? देखना यह है भगवान में राग हम कैसे लगाते हैं। उपाय ठीक होना चाहिए। आदमी पैर के बल से ठीक चल सकता है, हाथों के बल से चलेगा तो गरदन में चोट लगेगी।

हम लोगों ने भगवान की जो कल्पना कर रखी है उस भगवान में यदि राग लगायें तो हो सकता है हमारा राग मनमाना राग हो। हम यदि किसी रूप में, किसी अवस्था में, किसी चित्र में राग करें तो सतत चित्र के आगे नहीं बैठ सकते, सतत उस अवस्था में नहीं रह सकते। इसलिए वह रागरहित अवस्था में नहीं ले जा सकेगा। जो लोग सतत भगवान के मंदिर में बैठते हैं, जैसे नौकरी करने पुजारी बैठता है उनका भी राग नहीं मिटता क्योंकि सचमुच में ईश्वर में उनका राग हुआ नहीं। हाँ, रामकृष्ण परमहंस ऐसे पुजारी थे जिनको ईश्वर में सचमुच राग था, अतः संसार में राग उनका मिट गया और वे ज्ञानी हो गये, मुक्त हो गये।

ईश्वर में राग होने का मतलब है कि किसी भी वस्तु या परिस्थिति में हमारा राग न टिके। वस्तु और परिस्थिति में राग टिका नहीं कि दुर्घटना घटी नहीं।

जब–जब भय आता है, दुःख आता है, चिन्ता आती है, कुछ भी कष्ट आता है, आपत्ति आती है तो समझना चाहिए कि हमारे राग को भय हुआ है, हमारे राग को चिन्ता हुई है, हमारे राग को क्रोध हुआ है, हमारे राग को द्वेष हुआ है, हमारे राग के कारण अशान्ति हुई है यह बात समझकर यदि आप उस राग से सम्बन्ध विच्छेद करें तो उसी समय आप राग रहित परमात्मा में पहुँच जाएँगे। लेकिन आदत पुरानी है। जीव कहेगा कि इतना तो चाहिए ही, इसके बिना काम कैसे चलेगा? तब सावधान रहना चाहिए कि राग पुरानी आदत है उसे सुधारना है। तुम रागरहित हो जाओगे तो जो होना चाहिए वह तुम्हारी हाजरी मात्र से होकर रहेगा । जो नहीं होना चाहिए वह नहीं होगा, रुक जायगा । तुम रागरहित होते ही समर्थ हो जाओगे। समर्थ के लिए फिर क्या असम्भव है ? सूर्य के उदय होने से ही फूल खिलने लगते है और बच्चे भी करवट लेने लगते हैं। हवाएँ विशेष आह्लादिनी बनने लगती है। प्रभात होते ही सचराचर में एक चेतना व्याप्त हो जाती है।

सूर्य के होने से जो होना चाहिए वह अपने आप होने लगता है, सूर्य को कुछ करना नहीं पड़ता। न्यायाधीश न्यायालय में अपनी कुर्सी पर आ जाय तो बाकी का काम अपने आप होने लगता है। अगर न्यायाधीश अपनी कुर्सी छोड़कर स्वयं झाड़ू लगाने लग जाय, पानी का मटका भरने लग जाय, वकील और मुवक्किल को पुकारने लग जाय तो अव्यवस्था हो जाएगी।

ऐसे ही तुम्हारे मन–इन्द्रियाँ आदि हैं। वे सब तुम्हारे नौकर–चाकर हैं। तुम अपने आप 'स्व' की गद्दी पर आ जाओ तो फिर जो होना चाहिए वह स्वाभाविक होने लगेगा। जो नहीं होना चाहिए वह नहीं होगा। अभी क्या होता है? जो होना चाहिए वह हो नहीं रहा, जो हो रहा है वह भी नहीं रहा, जो भा रहा है वह टिक नहीं रहा.... हम मुसीबत में चले जा रहे हैं।

रागरहित हुए बिना भोगी योगी नहीं हो सकता, भक्त भगवान को नहीं पा सकता, स्वार्थ सेवा में नहीं बदल सकता, जीव ब्रह्म में नहीं मिल सकता। इसलिए रागरहित होना यह जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

रागरहित होने के लिए क्या करना चाहिए ?

राग सुख में ही तो होता है। अतः सुख लेने की अपेक्षा सुख देने के भाव से कार्य करो, भोग भोगनेकी अपेक्षा भोग का सदुपयोग करो। इससे राग क्षीण होता जाएगा। जितने अंश में राग क्षीण होता जाएगा उतने अंश में सामर्थ्य आता जाएगा। फिर चाहे मीरा कीर्तन करते–करते राग भूली और जहर अमृत हो गया, शबरी झाडू लगाते–लगाते राग भूली और रामजी द्वार पर आ गये, प्रह्लाद हरि को स्नेह करते–करते राग को भूले और नरसिंह अवतार प्रकट हो गया, ध्रुव पिता की गोद में बैठने का राग भूलने के लिए हरि का राग लगाकर हरिमय हो गये और हरि प्रकट हो गये।

रागरहित होना ब्रह्म होना है। रागरहित होना सिद्ध योगी होना है। रागरहित होना पूजनीय भक्त होना है। रागरहित होना सफल निष्काम कर्मयोगी होना है। जो सेवा के बहाने झण्डा लेकर चलते हैं वे अगर सचमुच में रागरहित होकर सेवा करें तो वे नेता भगवान के दर्शन कर सकते हैं, आत्म–साक्षात्कार कर सकते हैं। जो भजन करते हैं वे अगर रागरहित होकर भजन करें तो जब चाहें, जहाँ चाहे वहाँ भगवान उनके लिए साकार रूप धारण करने को तत्पर हैं।

एकनाथ जी महाराज रागरहित हुए। उन्होंने सोचाः मुझसे इतना सेवाकार्य होता नहीं है, कोई सहयोगी मिल जाय, कोई नौकर–चाकर मिल जाय।' कथा कहती है कि भगवान श्रीखण्ड्या का रूप धारण करके बारह साल तक उनकी चाकरी में रहे। धन्ना जाट के पास भगवान खेत में सहाय करने के लिए मजदूर होकर रहते थे।

रागरहित होते ही जो होना चाहिए वह होने लगेगा। जो नहीं होना चाहिए वह नहीं होगा। तो फल क्या होगा? तुम्हारे चित्त में बड़ी शान्ति रहेगी। अभी जो होना चाहिए वह नहीं होता है। जो नहीं होने चाहिए वे प्रोब्लम होते हैं, समस्याएँ होती हैं, अशान्ति होती है। अशान्ति होने से तुम्हारा अपना जो तुर्यावस्था का स्वभाव है वह बिखर जाता है। जैसे, पानी शान्त है लेकिन उसमें लकड़ी डालकर हिलाते रहो, डण्डे मारते रहो, पानी को कूटते रहो तो क्या होगा? पानी बिखरता जाएगा और तुम्हारा श्रम व्यर्थ होता जाएगा।

एक आदमी नदी पर जाकर लाठी से पानी को कूटने लगा। कोई महात्मा वहाँ से गुजरे। उन्होंने पूछाः

"महाराज ! मैं निष्काम कर्म कर रहा हूँ। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।"

निष्काम कर्म करो लेकिन कर्म निष्प्रयोजन तो नहीं होना चाहिए। रागरहित होने के लिए स्वार्थरहित और सप्रयोजन, सार्थक कर्म होना चाहिए। तभी वह परहित का कार्य निष्काम सेवा बन सकेगा।

हम लोग जब सेवा करते हैं तब अपने राग को पोसने के चक्कर में चलते हैं इसलिए सेवा दुकानदारी बन जाती है। हम भक्ति करते हैं तो राग को पोसने के लिए करते हैं, योग करते हैं तो राग को पोसने के लिए करते हैं, भोजन करते हैं तो राग को पोसते हैं। ऐसा नहीं कि शरीर को पोसने के

लिए भोजन करते हैं। जब शरीर को पोसने के लिए भोजन करेंगे तब वह भोजन भोजन नहीं रहेगा, भजन बन जाएगा। राग को पोसेंगे तो वह भोजन भोग हो जायेगा। रागरहित होकर भोजन करो तो भोजन योग हो जायगा। रागरहित होकर बात करो तो बात भक्ति हो जाएगी। रागरहित होकर संसार का व्यवहार करो तो वह कर्म योग हो जाएगा। हमारी तकलीफ यह है कि राग की पूँछ पकड़े बिना हमसे रहा नहीं जाता।

जब–जब दुःख, मुसीबत, चिन्ता, भय घेर लें तब सावधान रहें और जान लें कि ये सब राग के ही परिवारजन हैं। उन चीजों में राग होने के कारण मुसीबत आयी है। राग तुम्हें कमजोर बना देता है। कमजोर आदमी को ही मुसीबत आती है। बलवान आदमी के पास मुसीबत आती है तो बलवान पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता। अगर प्रभाव पड़ गया तो वह मुसीबत की अपेक्षा कमजोर है।

जब दुःख मुसीबत आये तो क्या करें ?

जब दुःख आयें तब बड़ों की शरण लेनी चाहिए। किसी न किसी की शरण लिये बिना हम लोग जी नहीं सकते, टिक नहीं सकते। दुर्बल को बलवान की शरण लेनी चाहिए।

बलवान कौन है? जो दण्ड–बैठक करता है वह बलवान है? जिसके पास सारे विश्व की कुर्सियाँ अत्यंत छोटी पड़ जाती हैं वह सर्वेश्वर सर्वाधिक बलवान है। तुम उस बलवान की शरण चले जाओ। बलवान की शरण गाँधीनगर में नहीं, बलवान की शरण दिल्ली में नहीं, किसी नगर में नहीं बल्कि वह तुम्हारे दिल के नगर में सदा के लिए मौजूद है। सच्चे हृदय से उनकी शरण चले गये तो तुरन्त वहाँ से प्रेरणा, स्फूर्ति और सहारा मिल जाता है। वह सहारा कइयों को मिला है। हम लोग भी वह सहारा पाने के लिए तत्पर हैं इसीलिए सत्संग में आ पहुँचे हैं।

तुम कब तक बाहर के सहारे लेते रहोगे? एक ही समर्थ का सहारा ले लो। वह परम समर्थ परमात्मा है। उससे प्रीति करने लग जाओ। उस पर तुम अपने जीवन की बागडोर छोड़ दो। तुम निश्चिन्त हो जाओगे तो तुम्हारे द्वारा अदभुत काम होने लगेंगे परन्तु राग तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने देगा।

जब राग तुम्हें निश्चिन्त नहीं होने दे तब सोचोः 'हमारी बात तो हमारे मित्र भी नहीं मानते तो शत्रु हमारी बात माने यह आग्रह क्यों? सुख हमारी बात नहीं मानता, सदा नहीं टिकता तो दुःख हमारी बात बात कैसे मानेगा? लेकिन सुख और दुःख जिसकी सत्ता से आ आकर चले जाते हैं वह प्रियतम तो सतत हमारी बात मानने को तत्पर है। अपनी बात मनवा–मनवाकर हम उलझ रहे हैं, अब तेरी बात पूरी हो... उसी में हम राजी हो जाएँ ऐसी तू कृपा कर, हे प्रभु!

हम दुःखी कब होते हैं?

जब हम अपनी बात को, अपने राग को ईश्वर के द्वारा पूर्ण करवाना चाहते हैं तब हम दुःखी होते हैं। अपने राग को जब ईश्वर के द्वारा पूरा करवाना न चाहें तब ईश्वर जो करेगा वह बिल्कुल पर्याप्त होगा।

रबिया ने रोजा रखा। रोजा खोलने के लिए उसके पास आधा कटोरा रस का था। वह कटोरा लेने लगी तो छुपी हुई बिल्ली ने जम्प मारा और रस ढुल गया। रबिया ने कहाः 'कोई बात नही। रस ढुल गया तो क्या हुआ? मैं पानी से ही रोजा खोल लूँगी।'

चिराग लेकर वह पानी भरने को गई। पैर में ठोकर लगी और चिराग गिर पड़ा, बुझ गया। खुद अन्धेरे में पानी की मटकी पर गिर पड़ी। पीने के लिए पानी भी हाथ नहीं लगा। रबिया कहने लगीः 'मेरे मालिक! रस का प्याला पीने की मैं अधिकारी नहीं थी लेकिन क्या पानी भी मेरे मुकद्दर में नहीं है?'

भीतर से आवाज आयीः 'रबिया! अगर तुझे राग सहित रहना है तो ठहर। मुझे तेरे दिल से

अपनी मुहब्बत निकाल लेने दे, फिर खूब संसार का राग और संसार का रस ले।'

रबिया छटपटा उठीः 'नहीं मेरे मालिक! मैं बिस्त को पाने के लिए तुझे प्यार नहीं करती, दोजख से बचने के लिए तुझे स्नेह नहीं करती और रस या पानी के लिए मैं तुझे नहीं पुकारूँगी। मैं तुझे तेरे लिए ही पुकारूँगी क्योंकि तू अपने आप में ही पूरा है।'

भगवान अपने आप में पूरे हैं। उनमें हमारी स्थिति हो जाय तो बस, सब कार्य सम्पन्न हो गये। रबिया ने कब चाहा था कि मोटेरा में आश्रम बने और हजारों लोगों के सामने मेरी प्रशंसा हो? प्रशंसा के लिए तो लोग मारे-मारे फिरते हैं, उनकी प्रशंसा तो होती नहीं। रागरहित होने से तुम्हारी प्रसिद्धि और प्रशंसा स्वाभाविक हो जाएगी। रागरहित होने से तुम्हारी मुक्ति स्वाभाविक हो जाएगी। रागरहित होने से तुम्हारा योग स्वाभाविक हो जाएगा।

पतिव्रता स्त्री में सामर्थ्य कहाँ से आता है? वह अपनी इच्छा नहीं रखती, अपना राग नहीं रखती। पति के राग में अपना राग मिला देती है। भक्त भगवान के राग में अपना राग मिला देता है। शिष्य गुरू के राग में अपना राग मिला देता है।

पति का राग कैसा भी हो लेकिन पतिव्रता पत्नी अपना राग उसमें मिटा देती है तो उसमें सामर्थ्य आ जाता है।

भगवान का राग यह होता है कि जीव ब्रह्म हो जाय, सदगुरू का राग यह होता है कि जीव अपने स्वरूप में जाग जाए। जब भगवान के राग में अपना राग मिला दिया, सदगुरू के राग में अपना राग मिला दिया, तो फिर चिन्ता और फरियाद को रहने की जगह ही नहीं मिलती।

जो शिष्य भी है और दुःखी भी है तो मानना चाहिए कि वह अर्ध शिष्य है अथवा निगुरा है। जो शिष्य भी है और चिन्तित भी है तो मानना चाहिए कि उसमें समर्पण का अभाव है। मैं भगवान का, मैं गुरू का तो चिन्ता मेरी कैसे? चिन्ता भी भगवान की हो गई.... गुरू की हो गई। हम भगवान के हो गये तो बेईज्जती हमारी कैसे? हम भगवान के हो गये तो 'प्रोब्लम' हमारे कैसे?

जैसे, आदमी कारखाने का कर्मचारी हो जाता है तो कारखाने को नफा हो चाहे नुक्सान हो, उस आदमी को अपनी तनख्वाह मिल जाती है। ऐसे ही हम जब ईश्वर के हो गये तो हमारा शरीर ईश्वर का साधन हो गया। उसे आजीविका मिलेगी ही। अपना काम होशियारी से, चतुराई से करे लेकिन अपने राग को तृप्त करने के लिए नहीं। जो कुछ करे, अपने राग को ईश्वर में समर्पित करने के लिए। यह बिल्कुल आसान उपाय है राग को मिटाने के लिए।

दूसरा उपाय यह हैः जो लोग सुखी हैं वे अपना राग नहीं छोड़ सकते। सुखी आदमी परहित में लगेगा तो उसका राग क्षीण होगा। दुःखी आदमी राग की वस्तु को मन से ही छोड़ेगा तो उसका योग होने लगेगा। भक्त भगवान में अपना राग मिलाने लगे तो उसकी भक्ति सफल होने लगेगी। सदगुरू के सिद्धान्तों में अपना राग मिला दे तो शिष्य सदगुरू बन जायगा।

कबीर जी ने कितना सुन्दर कहाः

सदगुरू मेरा शूरमा करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का हरे भरम की कोट॥

जीव का भ्रम है किः "यह मिल जाय तब मैं सुखी होऊँगा। यह परिस्थिति चली जाय तब मैं सुखी होऊँगा। बेटा हो जाय तब सुखी होऊँगा।" यह सारा का सारा भ्रम है, भ्रांति है। इससे अगर कोई सुखी हो जाता तो संसार में कई लोग आज तक सच्चे सुखी हो जाते। इन चीजों से वास्तव में सुख का कोई सम्बन्ध नहीं है। सच्चे सुख का सम्बन्ध है रागरहित होने से। रात्रि को जितने अंश में तुम्हारा राग दब जाता है उतने तुम निश्चिन्त होते हो, निश्चिन्त सोते हो। सुबह होते ही तुम्हारा राग जगता

हैः "यह करना है..... यह पाना है.... यह लेना है.... .वहाँ जाना है...." तो मस्तिष्क में चिन्ताएँ सवार हो जाती हैं। जब सत्संग, ध्यान, भजन के स्थान में आते हैं, राग की बातों को छोड़ देते हैं तो लगता हैः "आहाहा... बापू ने बड़ा आनन्द दिया..... बड़ी शान्ति दी।" बापू ने आनन्द नहीं दिया, बापू ने शांति नहीं दी। बापू का भी बापू तुम्हारे हृदय में था। रागरहित होकर तुमने उसकी झाँकी कर ली तो आनन्द आ गया, शान्ति मिल गई। वह भीतर वाला बापू तो सदा से तुम्हारे साथ ही बैठा है। राग रहित हो जाओ, सब काम बन जाएँगे। राग छोड़ना एक दिन का काम नहीं है। रोग पुराना है। एक दिन की औषधि से काम नहीं चलेगा। प्रतिदिन औषधि खाओ और प्रति व्यवहार के समय औषधि खाओ तो काम बनेगा। अन्य औषधियाँ तो रिएक्शन करती हैं लेकिन सत्संग विचार की औषधि सारे रिएक्शनों को स्वाहा कर देती है। इसलिए बार-बार सत्संग विचार करो, आत्म-विचार करो।

यह विचार केवल मंदिर में बैठकर ही नहीं किया जाता। यह मंदिर में भी होता है, सत्संग भवन में भी होता है, दुकान पर बैठकर भी होता है, रास्ते चलते-चलते भी होता है। यह विवेक विचाररूपी मित्र ऐसा है जो सदा साथ रहता है, सुरक्षा करता है।

विवेक को जागृत करते जाओ। अविद्या का अन्धकार धीरे-धीरे बिखरता जाएगा। सुबह में सूर्य के उदय होने से पहले ही अन्धकार पलायन होने लगता है ऐसे ही विवेक जागेगा तो दुःख मिटने लगेंगे। सब दुःख मिटाने की यह कुंजी है। अन्यथा तो, राग लेकर बैठे और योग किया, प्राण ऊपर चढ़ा दिये, शरीर को वर्षों तक जीवित रखा, फिर नट की समाधि खुली तो वह राजा से बोलता है कि लाओ, मुझे इनाम में तेज भागने वाली घोड़ी दे दो। रागरहित नहीं हुआ तो क्या लाभ? योग किया, प्राण चढ़ाकर सहस्रार चक्र में पहुँच गया, हजारों वर्ष की समाधि लगा दी फिर भी ठंठनपाल रह गया। राजा जनक ने राग मिटा दिया तो जीवन्मुक्त होकर राज्य करते है।

राग मिटाने का एक मधुर तरीका यह भी है कि भगवान में राग करते रहो।

तुम बच्चे को कह दो कि सुबह-सुबह अण्डे का चिन्तन मत करना। दूसरे दिन सुबह में उसको अण्डे का चिन्तन आ जायगा। उसे अगर अण्डे के चिन्तन से बचाना है तो उसे अण्डे का चिन्तन मत करो, ऐसा न कहो। उसे कहोः 'सुबह उठकर हाथों को देखना, भगवान नारायण का चिन्तन करना।

कराग्रे वसति लक्ष्मीः करमूले सरस्वती।
करमध्ये तु गोविंदः प्रभाते करदर्शनम्॥

इस प्रकार सुबह-सुबह में अपने हाथ को देखकर भगवान नारायण का स्मरण करने से अपना भाग्य खुलता है।' इस प्रकार बच्चा भगवान का स्मरण करने लग जाएगा और उसका हल्का चिन्तन अपने आप चला जायेगा।

विकारों को पोसने वाली हमारी संवित् को विकारों से हटाने के लिए निर्विकारी नारायण का चिन्तन करने से विकारों को हटाने का परिश्रम नहीं पड़ेगा। विकारों को हटाने के लिए अगर परिश्रम करने लगे और कदाचित सफल हो गये, विकार हट गये तो गर्व हो जाएगा किः "मैंने काम को जीता, मैंने लोभ को जीता, मैंने मोह को छोड़ा, मैं आठ दिन तक मौन मंदिर में रह गया.....।" ऐसा गर्व आने से भी खतरा है। अगर प्रभु में राग कर लेते हैं तो गर्व आने का खतरा नहीं रहेगा।
कबीर जी ने कहा हैः

सब घट मेरा साँईया खाली घट न कोय।
बलिहारी वा घट की जा घट परगट होय॥

कबीरा कुँआ एक है पनिहारी अनेक।
न्यारे न्यारे बर्तनों में पानी एक का एक॥

कबीरा यह जग निर्धना धनवंता नहीं कोई।
धनवंता तेहू जानिये जा को रामनाम धन होई॥

जो चैतन्य सबके रोम–रोम में बस रहा है वह राम...... जो चैतन्य सबको आकर्षित कर रहा है वह कृष्ण.... उस चैतन्य में अगर मन लग जाये तो बेड़ा पार है। जहाँ से हमारी संवित उठती है वही सारे विश्व का आधार है। वही तुम्हारा अन्तर्यामी आत्मा तुम्हारे अति निकट है और सदा रहता है। पत्नी का साथ छोड़ना पड़ेगा, पति का साथ छोड़ना पड़ेगा, साहब का साथ छोड़ना पड़ेगा, अरे लाला! इस शरीर का भी साथ छोड़ना पड़ेगा लेकिन उस अन्तर्यामी साथी का साथ कभी नहीं छोड़ना पड़ेगा। बस, अभी से उसी में आ जाना है, और क्या करना है? यह कोई बड़ा काम है? जिसका कभी साथ नहीं छूटता है उसमें राग करना है। जिसका साथ टिकता नहीं है उससे राग हटा देना है।

साथ टिकेगा नहीं उस चीज से अपना राग हटा लेंगे तो तुम स्वतन्त्र हो जाओगे। अगर साथ न टिकने वाली चीजों में राग रहा तो कितना दुःख होगा ! दुःख ही होगा, और क्या होगा ?

हम उसी से सम्बन्ध जोड़ रहे हैं जिससे आखिर तोड़ना है। जिससे सम्बन्ध तोड़ना है उसके साथ तो प्रारब्धवेग से सम्बन्ध होता रहेगा, आता रहेगा, जाता रहेगा..... लेकिन जिससे सम्बन्ध कभी नहीं टूटता उसकी केवल स्मृति रखनी है, सम्बन्ध जोड़ने का परिश्रम भी नहीं करना है। दुनिया के अन्य तमाम सम्बन्धों को जोड़ने के लिए मेहनत करनी पड़ती है।

कलेक्टर की कुर्सी के लिए सम्बन्ध जोड़ना है तो बचपन से पढ़ाई करते–करते.... मजदूरी करते–करते.... परीक्षाओं में पास होते–होते आखिर आई.ए.एस. हो गये। फिर कलेक्टर पद पर नियुक्ति हुई तब कुर्सी से सम्बन्ध जुड़ा। कभी एक जिले में तो कभी दूसरे जिले में बदली होती रही..... आखिर बुढ़ापे में साहब बेचारा देखता ही रह जाता है। जवानी में तो हुकूमत चलाई लेकिन अब छोरे कहना नहीं मानते। इससे तो हे भगवान! मर जाएँ तो अच्छा।

अरे ! तू मरने के लिए जन्मा था कि मुक्त होने के लिए जन्मा था ?

तुम पैदा हुए थे मुक्त होने के लिए। तुम पैदा हुए थे अमर आत्मेदव को पाने के लिए।

"पढ़ते क्यों हो ?"

"पास होने के लिए।"

"पास क्यों होना है ?!"

"प्रमाणपत्र पाने के लिए।"

"प्रमाणपत्र क्यों चाहिए ?"

"नौकरी के लिए।"

"नौकरी क्यों चाहिए ?"

"पैसे कमाने के लिए।"

"पैसे क्यों चाहते हो ?"

"खाने के लिए।"

"खाने क्यों चाहते हो ?"

"जीने के लिए।"

"जीना क्यों चाहते हो ?"

"................"

कोई जवाब नही। कोई ज्यादा चतुर होगा तो बोलेगाः "मरने के लिए।" अगर मरना ही है तो केवल एक छोटी सी सुई भी काफी है। मरने के लिए इतनी सारी मजदूरी करने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में हर जीव की मेहनत है स्वतन्त्रता के लिए, शाश्वतता के लिए, मुक्ति के लिए। मुक्ति तब मिलती है जब जीव रागरहित होता है।

राग ही आदमी को बेईमान बना देता है, राग ही धोखेबाज बना देता है, राग ही चिन्तित बना देता है, राग ही कर्मों के बन्धन में ले आता है। रागरहित होते ही तुम्हारी हाजिरी मात्र से जो होना चाहिए वह होने लगेगा, जो नहीं होना चाहिए वह रूक जाएगा। रागरहित पुरूष के निकट हम बैठते हैं तो हमारे लोभ, मोह, काम, अहंकार शान्त होने लगते हैं, प्रेम, आनन्द, उत्साह, ईश्वर-प्राप्ति के भाव जगने लग जाते हैं। उनकी हाजरी मात्र से हमारे हृदय में जो होना चाहिए वह होने लगता है, जो नहीं होना चाहिए वह नहीं होता।

राग रहित होना माने परम खजाना पाना। रागरहित होना माने ईश्वर होना। रागरहित होना माने ब्रह्म होना।

आजकल तो सब दरिद्र मिलते है। धन तो है लेकिन दिल में शान्ति नहीं है। सत्ता तो है लेकिन भीतर रस नहीं है। धन होते हुए हृदय में शान्ति नहीं है..... वे कंजूस, धन के गुलाम, धन में राग वाले, सत्ता में राग वाले, परिवार में रागवाले सफल दरिद्र हैं। इन चीजों को बटोरकर सुखी हो जाना चाहते हैं वे मूर्ख हैं।

कबीरा इह जग आयके बहुत से कीने मीत।
जिन दिल बाँधा एक से वो सोये निश्चिन्त॥

रागरहित हुए तो एक परमात्मा का साक्षात्कार हो गया, वे निश्चिन्त हो गये। फिर उनकी मृत्यु उनकी मृत्यु नहीं है, उनका जीना उनका जीना नहीं है। उनका हँसना उनका हँसना नहीं है। उनका रोना उनका रोना नहीं है। वे तो रोने से, हँसने से, जीने से, मरने से बहुत परे बैठे हैं।

न तद् भासते सूर्यो न शशांको न पावकः।
यद् गत्वा न निर्वतन्ते तद् धाम परमं मम॥

'जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, उस स्वयं प्रकाश परम पद को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही, वही मेरा परम धाम है।'

(भगवद् गीताः १५.६)

रागरहित पुरूष उस परम धाम को प्राप्त हो जाते हैं। बस, इतना ही काम है जो चुटकी बजाते पूरा हो जाय। ऐसा नही कि कुछ करेंगे तब परम धाम में जाने के लिए विमान आयगा। अरे, विमानवाले धाम में तो खतरा है। पुण्य क्षीण होते ही मृत्युलोक में वापस।

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

परम धाम में तो आवागमन और वायदे की तो बात ही नहीं।

मूंआ पछीनो वायदो नकामो को जाणे छे काल।
आज अत्यारे अब घड़ी साधो जोई लो नगदी रोकड़ माल॥

तुम्हारी संवित् स्फूर्ति है, जाग्रत अवस्था में जाती है, स्वप्न अवस्था में जाती है, कुण्ठित होने पर सुषुप्ति में जाती है, उससे परे जो तुर्यावस्था है, जो जाग्रत को, स्वप्न को, सुषुप्ति को देखती है उस तुर्यावस्था का तुम हररोज अनुभव करते हो। वहीं से तुम्हारी संवित् उठती है।

तुमने जाग्रतावस्था देखी, जाग्रतावस्था बदल गई। सोये तो स्वप्न देखा और स्वप्न चला गया। फिर गहरी नींद में चले गये। नींद भी पूरी हो गई तो फिर जाग्रत में आ गये। इन तीनों अवस्थाओं को देखने वाला, जानने वाला तो कोई है। यह जानने वाली तुर्यावस्था है। तुर्यावस्था में पहुँचे तो रागरहित हो गये।

जानने वाले में हम लोग टिकते नहीं और जो जाना जाता है उसमें भटकने से उबते नहीं। कितने चतुर आदमी हैं हम लोग ! जो जाना जाता है उसमें भटकते हैं जिससे जाना जाता है उसमें टिकते नहीं केवल ये दी ही गलतिया हैं, बाकी सब ठीक है।

बाकी बचा क्या ? सर्वनाश हो गया। जिन लोगों ने आज तक संसार का जो कुछ पकड़ा था, थामा था उनको आखिर मिला क्या ? उन्हीं चीजों को हम पकड़ रहे हैं। उन्हीं शरीरों से पकड़ रहे हैं। आज तक सदा के लिए कोई माई का लाल पकड़ नहीं पाया। दूसरों को फूँक मारकर मौत से उठाने वाले पीर फकीर लोग भी संसार को नहीं पकड़ पाये। अवतारों को भी सब छोड़ना पड़ा तो औरों की क्या बात करें ?

......तो जो छोड़ना है उससे राग छोड़ दो। राग छूटते ही तुम बादशाह हो जाओगे। जो छोड़ना है उससे राग छोड़ दो, भले उस वस्तु को मत छोड़ो। केवल राग छोड़ दो। राग छोड़ते ही वह वस्तु तुम्हारे लिए प्रसाद बन जाएगी। वह वस्तु परहित में लग जाएगी। राग ही तो बाँध रखता है। जीवनभर जो चीज नहीं दी वह मृत्यु आने पर बलात्कार से देनी ही पड़ेगी। जीवनभर जिन चीजों को सँभाला, मरते समय सब छोड़कर जाना ही पड़ेगा। हाँ..... राग साथ में चलेगा और वही राग जीव को छिपकली बना देगा, छछूंदर बना देगा।

जन्म मरण का कारण भगवान नहीं है। जन्म–मरण का कारण पत्नी, पुत्र, परिवार, मित्र या कोई व्यक्ति नहीं है। जन्म–मरण का कारण राग है। इसलिए हे नाथ ! अपने आप पर कृपा करो। रागरहित होने का यत्न करो।

नारायण.... नारायण... नारायण..... नारायण...... नारायण। रागरहित, वीतराग पुरूषों के सान्निध्य से निर्भय सुख मिलता है, निर्विकार सुख मिलता है, निर्द्वन्द्व सुख मिलता है। राग की पूर्ति करने से भयवाला सुख मिलता है, चिन्ता वाला सुख मिलता है। वास्तव में वह सुख नहीं है, हर्ष है। ऐसा कोई भोगी नहीं जो भोग के प्रारम्भ में पराधीनता, भोग के समय शक्तिहीनता और अन्त में जड़ता का अनुभव न करे। भोग पराधीनता, शक्तिहीनता और जड़ता में ले जाता है। योग स्वाधीनता, शक्ति और चेतनता में ले जाता है। दोनों के बीच बड़ा फासला है।

जो लोग भोग में पड़ते हैं और अति भोगी हो जाते हैं वे मृत्यु के बाद वृक्ष आदि जड़ योनियों में चले जाते हैं।

एक बार केवल तीन मिनट के लिए रागरहित अवस्था का साक्षात्कार हो जाए फिर चाहे वह भोग में रहता दिखे चाहे योग में रहता दिखे, चाहे घर में रहता दिखे चाहे हिमालय की कन्दरा में रहता दिखे, लेकिन वह है अपने स्वरूप में। भोग उसे बाँध नहीं सकते। वह चाहे शास्त्र के अनुकूल आचरण करे या शास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन करके भी विचरे फिर भी कोई प्रत्यवाय नहीं लगता।

सामान्य आदमी क्रोध करता है तो उसका तप नष्ट हो जाता है। उसके संकल्प में बल नहीं रहता। दुर्वासा ऋषि अकारण क्रोध करते थे फिर भी उनकी शक्ति क्षीण नहीं हुई। क्योंकि वे वीतराग महापुरूष थे।

रागरहित अवस्थावाला कैसा होता है? उसके पीछे–पीछे हरि फिरते है। भगवान श्रीकृष्ण कहते है–

उधो मोहे संत सदा अति प्यारे......
मैं संतन के पीछे जाऊँ जहाँ जहाँ संत सिधारे।
उधो मोहे....

जिसके राग का अन्त हो गया है वह संत। राग का अंत होते ही जन्म मरण का अंत हो गया, भय का अंत हो गया, चिन्ता का अंत हो गया, काम का अंत हो गया, क्रोध का अंत हो गया, लोभ का अन्त हो गया, मोह का अंत हो गया, अहंकार का अंत हो गया। पूरा मूल ही कट गया। कितनी सीधी बात है ! फिर भी कठिन लगती है क्योंकि राग को पोसने की आदत पुरानी है।

जो बीड़ी नहीं पीते उनके लिए बीड़ी छोड़ना कोई कठिन नहीं। जो अभी बीड़ी पीने के सिक्खड़ हैं उन्हें छोड़ना कठिन है और जिनको बीड़ी गहरी चली गई है उनको तो बीड़ी छोड़ना असंभव सा है। रोटी नहीं मिलेगी तो चलेगा लेकिन बीड़ी के बिना नहीं चलेगा।

जो जहाँ है वहाँ सुखी होने की कला नहीं सीखता उसके लिए स्वर्ग भी सुखद नहीं होगा। जो जहाँ है वहीं अपनी गहराई में जाने की कला सीख गया है तो वह अगर नर्क में भी जाएगा तो नर्क भी उसके लिए स्वर्ग बन जाएगा, वैकुण्ठ बन जाएगा।

हे मानव! तू अपनी गहराई में गोता मार। बाह्य परिस्थितियों में आसक्ति मत रख। तू जहाँ है वहीं अपने सुखस्वरूप आत्मा को पा। रागरहित हो जा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संत सूरदास

महाकामी, वेश्यागामी बिल्वमंगल अपनी पत्नी होते हुए भी वेश्या के फंदे में बुरी तरह फैल गया था। सावन का महीना था। रात्रि का समय था। जोरों की वर्षा हो रही थी। यमुना नदी पागल–सी होकर बह रही थी। आँधी–तूफान चल रहा था। वृक्ष गिर रहे थे। घनघोर रात्रि में बिजली चमक रही थी। बिल्वमंगल के दिमाग में काम विकार का कीड़ा कुरेद रहा था।

वह उठा। घर का दरवाजा खोला। अपनी पत्नी का त्याग करके घनघोर अन्धकार में, बरसात में चल पड़ा। बिजली के चमकारे में अपने पगडंडी खोजता हुआ जा रहा था अपनी प्रेयसी चिन्तामणि वेश्या के भवन की ओर.... उफनती हुई यमुना नदी के उस पार।

बिल्वमंगल नदी के किनारे पर आया। नाविकों से कहाः "मुझे उस पार जाना है। नाव ले चलो......।"

नाविकों ने कहाः "पागल हुए हो? अपनी जान प्यारी नहीं है क्या? घर पर बीबी–बच्चे हैं कि नहीं? तुम्हारी चवन्नी के लिए हमें नाव के साथ सागर में नहीं पहुँचना है। रात्रि के बारह बजे हैं। बिल्वमंगल! तुम्हारी बुद्धि क्यों नष्ट हो गई है? मूसलधार वर्षा हो रही है। घनघोर अन्धकार है। नदी दोनों किनारों को डुबाती हुई बह रही है। ऐसी परिस्थितियों में तुम्हें नदी के उस पार जाना है? कुछ होश है कि नहीं?"

बिल्वमंगल कहता हैः "चिन्तामणि के यहाँ पहुँचूँगा तब मैं होश में आऊँगा। अभी तो मानो बेहोश ही हूँ। तुम मुझे नदी के उस पार ले चलो।"

कोई नाविक जाने के लिए तैयार नहीं था। बिल्वमंगल ने अधिक किराये का प्रलोभन दिया लेकिन व्यर्थ। अपने प्राणों की बाजी लगाने को कोई तैयार नहीं था।

लेकिन बिल्वमंगल....! अपनी प्रेयसी से मिलने के लिए बेचैन था वह। कामातुर बिल्वमंगल बाढ़ में उफनती हुई यमुना में कूद पड़ा। हाथ–पैर चलाते हुए आगे बढ़ा। नदी के प्रवाह से बिल्वमंगल का कामावेग का प्रवाह अधिक बलवान सिद्ध हुआ। प्रेयसी चिन्तामणि के मिलन के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी।

बिल्वमंगल हाथ–पैर मारता हुआ, तीव्र गति से बहती हुई यमुना के प्रवाह में डूबता–उतरता आखिर कैसे भी करके सामने किनारे पहुँच गया। शरीर भीगा हुआ था। साँस फूल गई थी। ठंडी के मारे ठिठुर रहा था। तन–बदन परिश्रम से थक चुका था। थोड़ी देर में स्वस्थ होकर बिल्वमंगल चल पड़ा अपनी माशुका के द्वार की ओर। पहुँचते ही द्वार पर दस्तक दी, पुकार लगायी।

चिन्तामणि उसकी दस्तक पहचान गई। दंग रह गई वह वेश्या। 'ऐसी मूसलाधार वर्षा हो रही है..... यमुना नदी बाढ़ से उफन रही है। मध्यरात्रि का घनघोर अन्धकार है फिर भी यह पुरूष आ पहुँचा! नदी को पार करके! ऐसी हिम्मत! ऐसा प्राणबल! ऐसी शक्ति! मेरे हाड़–मांस के लिए इतना प्रेम! यह प्रेम अगर विश्वनियन्ता परमात्मा के लिए होता तो यह पुरूष विश्व की महान् विभूति बन जाता।'

चिन्तामणि के चित्त में प्रभु की पावन प्रेरणा का संचार हुआ। हृदय में बैठे हुए हरि ने चिन्तामणि को सत्प्रेरणा दी।

बिल्वमंगल बार–बार द्वार खटखटाने लगा। चिन्तामणि ने द्वार नहीं खोला। वह किवाड़ के पीछे खड़ी होकर अपने ग्राहक को कहने लगीः "बिल्वमंगल ! ऐसी जोरों की बारिश में तू बाढ़ के पानी से भरपूर यमुना को पार करके आ गया?"

"हाँ प्रिये! कोई नाविक नाव चलाने के लिए तैयार नहीं था तो मैं नदी तैरकर तेरे पास आया हूँ। तू दरवाजा खोल।"

तब चिन्तामणि कहने लगीः "यह दरवाजा अब तेरे लिए नहीं खुलेगा। सदा के लिए बन्द रहेगा। अब तू अपने हृदय के द्वार खोल। अब तू प्रभु के द्वार खटखटा। मेरा द्वार तू कब तक खटखटाता रहेगा ?"

बिल्वमंगल के दिल में धक्का सा लगाः "अरे चिन्तामणि! यह तू क्या कह रही है? तुझे देने के लिए मैं कितना धन लाया हूँ, द्वार खोलकर जरा देख तो सही !"

चिन्तामणि ने दृढ़ स्वर से कह दियाः "ये द्वार अब तेरे लिए कभी नहीं खुलेंगे। तू प्रभु का द्वार खटखटा। मेरे जैसी वेश्या का द्वार खटखटाने के लिए तू मध्यरात्रि में इतना साहस कर सकता है तो हे बिल्वमंगल! मेरे हरि का द्वार तू खटखटायेगा तो महान संत हो जाएगा।"

बिल्वमंगल कहता हैः "इन सब बेकार बातों को छोड़ चिन्तामणि! भगतड़ों की ये बाते तेरे मुँह में नहीं सोहती प्रिये! मैं तुझसे मिलने के लिए लालायति हो रहा हूँ और तू बातें बनाये जा रही है! अब मुझे ज्यादा मत तड़पा। जल्दी द्वार खोल। मुझे तेरे दर्शन करने दे। तेरे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता।"

आँखों में आँसू लाकर बिल्वमंगल गिड़गिड़ा रहा है। उधर चिन्तामणि अपने हृदय पर भारी शिला रखकर अपने हृदय को जबरन कठोर बना रही है। बाहर खड़े अपने पर फिदा होने वाले से कहने लगीः "बिल्वमंगल! मेरे दर्शन करके क्या करेगा ? इन हाड़–मांस पर मोह करके कितने ही लोग बरबाद हो गये हैं। हे बिल्वमंगल! तुझे अगर दर्शन ही करने हों तो हरि बैठा है तेरे हृदय में। उसी प्यारे प्रभु के दर्शन कर। तेरा कल्याण हो जाएगा। वह परमात्मा जन्म–जन्म से तेरे साथ है। मेरे दर्शन से तेरा कोई काम नहीं बनेगा। मैं तुझे क्या दर्शन दूँगी? मैं तो पापिन हूँ.... मैंने अपना जीवन पापकर्म में नष्ट किया और कइयों के घर बरबाद किये। मेरे दर्शन से तेरा उद्धार नहीं होगा। सच्चा दर्शन तो हरि का दर्शन है। तेरा उद्धार तो हरि के दर्शन से होगा।"

मानो, आज चिन्तामणि के मुँह से स्वयं हरि बोल रहे हैं। चिन्तामणि के हृदय का कब्जा मानो प्रभु ने ले लिया है। चिन्तामणि रूपी चिराग के द्वारा हरि स्वयं बिल्वमंगल का पथप्रदर्शन कर रहे हैं।

बिल्वमंगल तीव्र कामावेग में आकर फिर से गिड़गिड़ाने लगाः "चिन्तामणि! प्रिय तू दरवाजा खोल। एक बार.... सिर्फ एक बार तेरा दीदार कर लेने दे। मैं अपनी पत्नी को छोड़कर तेरे पास आया हूँ। नाविकों ने मुझे समझाया बुझाया तो उनकी बातों का भी त्याग करके तेरे पास आया हूँ। नदी की बाढ़ में कूदकर अपने प्राणों की बाजी लगाकर तेरे पास आया हूँ, प्रिये! मेरा आगमन व्यर्थ मत कर चिन्तामणि! द्वार खोल।"

चिन्तामणि कहती हैः "तेरे कई आगमन व्यर्थ हुए बिल्वमंगल! अनेक जन्मों का आवागमन तू व्यर्थ करता चला आ रहा है। मेरे दर्शन से भी तेरा आगमन व्यर्थ ही रहेगा। तेरा आगमन तभी सफल होगा जब तू हरि के दर्शन करेगा, आत्मा के दर्शन करेगा, किसी संत महात्मा के दर्शन करेगा, किसी आत्मज्ञानी महापुरूष के चरणों में अपना सिर झुकायेगा। तभी तेरा आगमन सफल होगा बिल्वमंगल! अब ये द्वार तुम्हारे लिए नहीं खुलेंगे..... नहीं खुलेंगे..... नहीं खुलेंगे....।"

बिल्वमंगल की आँखों में आँसू हैं..... दिल में बेचैनी है.... बुद्धि में आश्चर्य है... चित्त में स्पन्दन है। वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा है। एक बार फिर से वह प्रयास करता हैः "हे कामिनी चिन्तामणि! आज तुझे क्या हो गया है? किसने तुझे यह पागलपन सिखाया है? तू पागल मत बन.... हे प्रिये ! इतनी कठोर मत बन। मेरा दिल तेरे प्यार में तड़प रहा है। अब अधिक तड़पाना छोड़ दे। अब

दिल्लगी करना छोड़ दे। मेरे धैर्य की क्यों कसौटी कर रही है? मेरे जैसा पिपासु प्रेमी तुझे दूसरा कोई नहीं मिलेगा प्रिये ! हे सुंदरी ! अब तो द्वार खोल दे।"

तब चिन्तामणि बोली उठीः "बिल्वमंगल ! मेरे जैसी वेश्या भी तुझे नहीं मिलेगी मेरे भाई !"

"अरे पगली ! तू मुझे क्या कहती है ? मुझे भाई कहकर पुकारती है ?"

"हाँ भैया ! आज से तू मेरा भाई है। मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। हे भाई ! तेरा कल्याण हो... तेरा उद्धार हो.... भाई ! तुझे भक्ति मिले..... भाई ! तुझे ज्ञान मिले..... भाई ! तुझे प्रभु का प्रेम मिले। मेरे जैसी दुष्ट स्त्री की छाया भी तुझ पर न पड़े। हे मेरे भाई ! मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ।"

उस वेश्या के हृदय से हरि नहीं बोल रहे थे तो और कौन बोल रहा था ? और किसका सामर्थ्य है कि वेश्या के मुख से ऐसे पवित्र वचन बोल सके ?

बिल्वमंगल का हृदय परिवर्तित हो गया। उसके उदगार निकलेः "हे देवी ! मेरे लिए तेरा यह द्वार नहीं खुलेगा तो और किसी का भी द्वार मैं नहीं खटखटाऊँगा। आज के बाद मैं कभी अपने घर नहीं जाऊँगा..... आज के बाद किसी सम्बन्धी के घर नहीं जाऊँगा.... आज के बाद किसी सेठ के घर नहीं जाऊँगा। जो सबका घर है, जो उसका सम्बन्धी है, जो उसका सेठ है, जो सबका स्वामी है, जो सबका मित्र है, जो सबका बाप है, जो सबकी माँ है, जो सबका बन्धु है, जो सबका सुहृद है, उस हरि का द्वार मैं अब खटखटाऊँगा। अब मैं किसी के द्वार पर खड़ा नहीं रहूँगा।"

बिल्वमंगल चिन्तामणि के द्वार से लौट पड़ा।

घूमता–घामता बिल्वमंगल किसी देवमंदिर में पहुँचा। सूखे बाँस की भाँति बिल्वमंगल ने देवमूर्ति के सामने गिरकर दंडवत् प्रणाम किये। लम्बे समय तक इसी अवस्था में रहकर वह प्रभु से प्रार्थना करने लगा। हृदय में आज तक किये हुए दुश्चरित्र का पश्चाताप है। आँखों से आँसू की धाराएँ बह रही हैं।

पुजारी ने बिल्वमंगल को उठाया। बिल्वमंगल कहने लगाः "मुझे उठाओ नहीं। काफी जन्मों तक मैं भटका हूँ। अब प्रभु के चरणों में मुझे विश्रान्ति लेने दो। पतितपावन के चरणों में मुझे पाप धोने दो।"

मुझे वेद पुरान कुरान से क्या
मुझे प्रभु का अमृत पिला दे कोई॥

मुझे कोई प्रभु का अमृत पिला दे.... मुझे कोई प्रभु की भक्ति दिला दे.... मुझे कोई प्रभु का प्रेम प्राप्त करा दे.... चिन्तामणि का प्रेम तो मुझे बरबाद कर चुका है। अब प्रभु का प्रेम मुझे आबाद करेगा।"

बिल्वमंगल मंदिर में दंडवत प्रणाम करके पड़ा रहा है। लोग उसे समझाकर उठाते हैं। बिल्वमंगल की आँखों में आँसू हैं। वे मानो कह रहे हैं–

एवो दी देखाड़ वहाला एवो दी देखाड़।
देखूं तारूँ रूप बधे एवो दी देखाड॥

"हे प्रभु! अब मैं तेरा द्वार छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

बिल्वमंगल ने प्रभु के द्वार पर पड़े रहते हुए सारा जीवन बिताने का संकल्प किया और वहीं रहने लगा। लोगों ने उसका जीवन देखा, उसकी प्रेमाभक्ति देखी, उसका दृढ़ संकल्प सुना। कुछ समय बीतने पर बिल्वमंगल को मंदिर का पुजारी बनाया गया। पुजारी को खाने पीने की चिन्ता नहीं करनी पड़ती। ठाकुर जी का चढ़ाया हुआ प्रसाद मिल जाता है।

वैराग्य आने पर घर छोड़ना सरल है। पुजारी बनकर पूजा करना सरल है लेकिन दुष्ट मन को

सदा के लिए प्रभु के चरणों में ही रखना कठिन है। जब तक परमात्मा का रस पूरा नहीं मिल जाता तब तक मन कब धोखा दे दे कुछ पता नहीं।

बिल्वमंगल मंदिर में रहता है, देवमूर्तियों की पूजा करता है, मंदिर को संभालने का कर्त्तव्य ठीक से उठा रहा है। साथ ही साथ अपना भक्तिभाव भी बढ़ा रहा है। लोगों में उसका अच्छा नाम हो रहा है।

एक दिन एक नववधू हार–सिंगार करके मंदिर में दर्शन करने आयी। नयी नयी शादी हुई थी। उसने भगवान के दर्शन किये, फूल चढ़ाये, दीपक जलाया, प्रसाद रखा। बिल्वमंगल की नजर उस सुंदर अंगना पर पड़ी। संयोगवश उसकी मुखाकृति चिन्तामणि जैसी थी। उसे देखते ही बिल्वमंगल की सुषुप्त कामवासना जाग उठी। वह भिन्न–भिन्न निमित्त बनाकर उस युवती के नजदीक रहने की चेष्टा करने लगाः

"लो, ये फूल अच्छे हैं, प्रभु को चढ़ाओ..... यह प्रभु का चरणामृत है, ग्रहण करो....यह लो भगवान का प्रसाद...." बिल्वमंगल की दृष्टि मानो उस युवती का सौन्दर्य पी रही थी। उसकी आँखों से आँखें मिलाकर मोहित हो रो रहा था। वह युवती समझ गई कि यह पुजारी मुँआ बदमाश है। वह जल्दी से घूँघट खींचकर भागती हुई घर जाने लगी।

काम–विकार ने बिल्वमंगल को अन्धा बना दिया। उसकी पुरानी आदत ने उसे अपने शिकंजे में झपेट लिया। प्रभुमय पवित्र जीवन बिताने का संकल्प हवा हो गया। सारासार का विवेक उसका धुँधला हो गया। वह अपने को वश में नहीं रख पाया। मंदिर छोड़कर वह भी उस युवती के पीछे–पीछे जाने लगा। वह युवती अपने घर पहुँच गई, दरवाजा बन्द कर दिया और पति से कहा कि वह पुजारी मुँआ बदमाश है।

बिल्वमंगल उसके घर पहुँचा। द्वार खटखटाया, नवविवाहित युवक ने द्वार खोले। वह समझदार इन्सान था। पुजारी से बोलाः "आइये पुजारी जी ! कैसे आना हुआ ?"

बिल्वमंगल ने विनती कीः "आपकी नववधू मंदिर में प्रभु के दर्शन करने आयी थी। मैंने उसके दीदार किये। मेरा चित्त मेरे वश में नहीं हो रहा है। आप कृपा करो। एक बार फिर मुझे उसके दर्शन करा दो। मंदिर मैं जैसा हार–सिंगार करके आयी थी वैसे की वैसी ही फिर से एक बार मेरे सामने खड़ी कर दो, सिर्फ एक ही बार.... केवल एक ही बार मुझे उसके दर्शन कर लेने दो। मुझसे रहा नही जाता। कृपा करो। मेरी इतनी सी प्रार्थना स्वीकार करो। आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा।"

वह युवक समझदार आदमी था। इस कामातुर जीव की दुर्दशा शायद वह समझ रहा है। वह भीतर गया। अपनी पत्नी को समझायाः "तू वैसा ही सिंगार करके उसके सामने एक बार जा। उसे देख लेने दे तेरा मुखचन्द्र। मैं दूसरे कमरे में बैठता हूँ। वह कुछ अनुचित चेष्टा करने की कोशिश करे तो मुझे आवाज देना। मैं उस पुजारी के बच्चे की धुलाई कर दूँगा।"

पत्नी पति की बात से सहमत हुई। सजधजकर पुजारी के सामने आयी। अपने घूँघट हटाया और बिल्वमंगल के सामने देखने लगी। बिल्वमंगल उस सुहागिनी नववधू को देखते हुए अपने आपसे, अपनी आँखों से कहने लगाः "हे अन्धी आँखें ! अब देख लो, इस हाड़–मांस के शरीर को जीभर के देख लो। बार–बार वहाँ जाती थी। क्या रखा उस पिंजर में देख लो....।"

फिर बिल्वमंगल ने उस नववधू से कहाः "बहन ! दो सूए लाओ न....।" नववधू को कुछ कल्पना नहीं थी। वह तो दो बड़े बड़े सुए लायी। बिल्वमंगल ने दोनों सुओं को दोनों हाथों में पकड़ा। फिर अपनी आँखों से कहने लगाः "हे मेरी धोखेबाज आँखें ! जहाँ हरि को देखना है, जहाँ प्रभु के दर्शन करने हैं वहाँ संसार को देखती हो ? संसारी हाड़–मांस में सौन्दर्य को निहारती हो ? हे मेरी

अन्धी आँखें ! इससे तो तुम न हो तो अच्छा है।"

ऐसा कहते हुए बिल्वमंगल ने दोनों हाथों से अपनी दोनों आँखों में सुए घुसेड़ दिये। दोनों आँखें फूट गईं। रक्त की दो धाराएँ बह चलीं। यह देखकर नववधू एकदम घबड़ा गई। चीख निकल गई उसके मुँह से। पासवाले कमरे में ही बैठा हुआ पति वहाँ आ गया। कल्पनातीत दृश्य देखकर वह हक्का-बक्का सा हो गया। पत्नी से पूछाः "यह क्या हो गया ?"

पत्नी ने बतायाः "मुझे क्या पता ये ऐसा करेंगे ? उन्होंने मुझसे दो सूए माँगे और मैंने ला दिय। मुझे जरा सा भी ख्याल आता तो मैं क्यों देती ?"

पति ने पत्नी को उलाहना दिया। बिल्वमंगल की आँखों का खून साफ किया, औषधि लगाई और आँखों पर प ी बाँध दी। हाथ में लाठी पकड़ा दी।

लाठी टेकते-टेकते बिल्वमंगल जाने लगा। रास्ते में ठोकरें खाते-खाते आगे बढ़ने लगा। ईश्वर के मार्ग पर चलते-चलते कितनी भी ठोकरें खानी पड़े लेकिन वे सार्थक हैं।

बिल्वमंगल गाँव से बाहर निकल गया। जंगल के रास्ते से जाते वक्त कुएँ जैसे खड्डे में गिर पड़ा। आसपास में कोई मनुष्य नहीं था। बिल्वमंगल प्रभु से प्रार्थना करने लगाः "हे नाथ ! मुझ अनाथ का अब तेरे सिवा कोई नहीं है। मुझ अन्धे की आँख भी तू है और लाठी भी तू है। जगत में एक ही अन्धा नहीं है, हजारों-हजारों अन्धे हैं, आँखें होते हुए भी अन्धे हैं लेकिन उन्हें पता नहीं है कि हम अन्धे हैं। हे प्रभु ! तूने मुझे जगाया है, मुझे पता चल गया है कि मैं अन्धा हूँ। हे प्रभु ! मैं पहले भी अन्धा था और अब भी अन्धा हूँ। पहले मुझे बाहर की आँखों पर भरोसा था लेकिन अब केवल तेरा भरोसा है। तू मुझे इस कूप से एवं संसाररूपी कूप से नहीं निकालेगा तो और कौन निकालेगा ? तू मेरा हाथ नहीं पकड़ेगा तो हे स्वामी ! और कौन मेरा हाथ पकड़ेगा ? हे मेरे हरि ! तू कृपा कर।"

बिल्वमंगल प्रभु से करूण प्रार्थना कर रहा है। प्रभु को लगा होगा कि यह जीव मेरी शरण में आया है। चाहे करोड़ों पाप किये हों, अरबों पाप किये हों, अरबों पाप किये हों लेकिन जीव जब कहे कि मैं तेरी शरण हूँ तो मुझे उसका हाथ पकड़ना ही पड़ेगा।

भगवान कुएँ के पास प्रकट हुए। बिल्वमंगल को बाहर निकाला। लाठी का आगे का छोर पकड़कर भगवान आगे-आगे चल रहे हैं। दूसरा छोर पकड़कर पीछे-पीछे बिल्वमंगल चल रहा है। चलते-चलते भगवान ने कहाः "हे सूरदास !"

बिल्वमंगल के हृदय में एहसास हुआ कि यह कोई ग्वाला नहीं है, यह कोई बालक नहीं है लेकिन सबके रूप में जो खेल खेल रहा है वह कन्हैया है।

सूरदास ने अपनी पकड़ी हुई लाठी पर धीरे-धीरे हाथ आगे बढ़ाया। प्रभु समझ गये कि सूरदास की नीयत बिगड़ी है.... वह मुझे पकड़ना चाहता । भक्त मुझे समर्पण से पकड़ना चाहे तो मैं पकड़ा जाने के लिए तैयार हूँ लेकिन चालाकी से पकड़ना चाहे तो मैं कभी पकड़ में नहीं आता।
सूरदास धीरे-धीरे अपना हाथ लाठी के दूसरे छोर तक ले जाते हैं लेकिन भगवान युक्ति से लाठी का दूसरा हिस्सा पकड़कर पहलेवाला छोड़ देते हैं। कैसे भी करके सूरदास को अपना स्पर्श नहीं होने देते। उनको रास्ता बताते हुए आगे-आगे चलते हैं।

सूरदास ने सोचा कि श्यामसुन्दर बड़े होशियार हैं। उन्हें बातों में लगाते हुए सूरदास ने कहाः
"आपका नाम क्या है ?"
"सब नाम मेरे ही हैं।"
"आप कहाँ रहते हैं ?"
"मैं सब जगह रहता हूँ और जो मुझे बुलाता है वहाँ जाता हूँ।"

"आपके बाप कौन हैं ?"
"जो चाहे मेरा बाप बन जाए, कोई हर्ज नहीं है।"
"आपकी माँ कौन हैं ?"
"जिसको मेरी माँ बनना हो, बन जाय, मैं उसका बेटा बनने को तैयार हूँ।"

सूरदास समझ गये कि परमात्मा के सिवाय ऐसा कोई कह नहीं सकता, ऐसा कोई बन नहीं सकता। उन्हें पक्का विश्वास हो गया कि साक्षात परात्पर परब्रह्म, अच्युत, अविनाशी, निर्गुण निराकार परमात्मा सगुण होकर मेरे जैसे सूरदास को मार्ग दिखाने आये है। अब मैं उनका स्पर्श कर लूँ..... उनका हाथ पकड़ लूँ..... उनके चरणों में अपना सिर रगड़ लूँ... अपना भाग्य बदल लूँ।

अभी सूरदास भूल रहे थे। भगवान को पकड़ लेने की नीयत थी। भगवान में मिट जाने की नीयत नहीं बनी, भगवान के द्वारा पकड़ जाने की नीयत नहीं बनी।

सूरदास आगे पूछने लगेः
"आपका गाँव कौन सा है ?"
"सब गाँव मेरे ही हैं और एक भी गाँव मेरा नहीं है। सब नाम मेरे हैं और एक भी नाम मेरा नहीं है। सच्चे हृदय स कोई किसी भी नाम से पुकारता है तो मैं वहाँ जाता हूँ।"
"आपको मक्खन-मिश्री भाते है या रबड़ी-शिखण्ड भाते हैं ?"
"कोई पदार्थ मुझे नहीं भाते क्योंकि कोई गरीब आदमी मुझे पदार्थ न भी दे सके। मक्खन-मिश्री, दूधपाक-पूरी, रबड़ी-शिखण्ड तो केवल अमीर लोग ही दे सकते हैं। गरीब में भी जो गरीब हो, अत्यंत गरीब हो वह भी मुझे खिला सके ऐसी चीज मुझे भाती है। मैं तो प्रेम का भूखा हूँ। कोई मुझे भाजी खिला दे तो भी खा लेता हूँ, केले के छिलके खिला दे तो भी खा लेता हूँ। बाजरे की बाटी खिला दे तो भी खा लेता हूँ और कोई पत्रं पुष्पं चढ़ा दे, तुलसीदल चढ़ा दे तो भी सन्तुष्ट हो जाता हूँ।"

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि प्रयतात्मनः॥

"जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि, निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ।"

(भगवद् गीताः ९.२६)

राहबर ने सूरदास को कहाः "सूरदास ! मैं तुझे क्या बताऊँ ? कोई सच्चे हृदय से मुझे कह दे कि 'मैं तेरा हूँ' तो वह मुझे सबसे अधिक भाता है। रूपयों-पैसों के द्वारा मिलने वाले पदार्थ मुझे उतने नहीं भाते। जितना किसी का प्रेमपूर्वक दिया हुआ अपना अहं भाता है। जो मेरा हो जाता है उसका सब कुछ मुझे भाता है।"

सूरदास को यकीन हो गया कि मानो न मानो, ये भगवान के सिवाय और कोई नहीं हैं। 'हे मेरे स्वामी ! हे मेरे प्रभु !..... पुकारते हुए ठाकुरजी का हाथ पकड़ने गये तो भगवान सूरदास की लकड़ी छोड़कर दूर चले गये। तब सूरदास कहते हैं-"मुझे दुर्बल जानकर अपना हाथ छुड़ाकर भागते है लेकिन मेरे हृदय में से निकल जाओ तो मैं जानूँ कि आप भाग सकते हैं। हे प्रभु ! अपने हृदय से मैं आपको नहीं जाने दूँगा.... नहीं जाने दूँगा।"

भगवान कहते हैं- "अपने हृदय से मत जाने दो लेकिन मुझे अभी बहुत काम है। संसार की भीड़ में से तेरे जैसे कई अन्धों को मुझे बाहर निकालना है इसलिए अब मैं जाता हूँ। तू इतना अन्धा

नहीं है लेकिन लोग तो आँखें होते हुए भी अन्धे हैं। जिन पदार्थों को छोड़कर जाना है पदार्थों से चिपक रहे हैं। जिस शरीर को जला देना है उस शरीर को सुखी करने के लिए मजदूरी करते हैं। ऐसे एक–दो लोग अन्धे नहीं है, लाखों–लाखों करोड़ों–करोड़ों लोग अन्धे हैं। अब मुझे संतों के हृदय में जाने दो, संतों के हृदय द्वारा लोगों को उपदेश देने दो कि यह अन्धापन छोड़कर हरि की शरण जाओ, ध्यान की शरण जाओ, विकारों का अन्धापन छोड़कर प्रेमाभक्ति की शरण जाओ, अहंकार का अन्धापन छोड़कर ज्ञान की शरण जाओ। कइयों को यह सन्देश देना है। संतों के हृदय में बैठकर बहुत काम करना है। अतः हे सूरदास ! मैं जाता हूँ। आज के बाद लोग तुम्हें बिल्वमंगल के बदले 'सूरदास' के नाम से पुकारेंगे, तुम्हारे पद जो लोग गायेंगे उनका हृदय पवित्र होगा। तुम्हारी कथा जो सुनेगा उसका हृदय भी पिघलेगा, निष्पाप होगा। उसे भक्ति–मुक्ति की प्राप्ति होगी। जाओ, मेरे आशीर्वाद हैं।"

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

विवेक दर्पण

जिनको मनुष्य जीवन की महत्ता का पता नहीं है वे लोग देह के मान में, देह के सुख में, देह की सुविधा में अपनी अक्ल, अपना धन, अपना सर्वस्व लुटा देते हैं। जिनको अपने जीवन की महत्ता का पता है, जिनको विवेक की आँख से वृद्धावस्था दिखती है, जिनको अपनी मौत दिखती है, जिनको अपनी बाल्यावस्था का तथा गर्भवास का दुःख दिखता है, जिनको संसार की नश्वरता दिखती है, जिनको सब सम्बन्ध स्वप्नवत् दिखते है ऐसे साधक मोह में, आडम्बर में न पड़कर, विलास में और प्रमाद में न पड़कर परमात्मा की गहराई में जाने की कोशिश करते हैं।

जैसे भूखा मनुष्य भोजन के सिवाय अन्य किसी भी बात पर ध्यान नहीं देता, प्यासा मनुष्य जैसे पानी की तीव्र उत्कण्ठा रखता है ऐसे ही विवेकवान साधक परमात्म, शान्तिरूपी पानी की उत्कण्ठा रखता है। जहाँ हरि की चर्चा नहीं होती, आत्मा की बात नहीं होती वहाँ वह व्यर्थ समय नहीं गँवाता। जिस कार्य को करने से चित्त परमात्मा की ओर नहीं जाता, जिस कार्य को करने से चित्त परमात्मा से विमुख हो वह कार्य सच्चा जिज्ञासु भक्त नहीं करता। जिस मित्रता से भगवद प्राप्ति न हो उस मित्रता को वह शूलों की शय्या समझता है।

वह संगति जल जाय जिसमें कथा नहीं राम की।
बिन खेती के बाढ़ किस काम की॥

वे नूर बेनूर भले जिस नूर में पिया की प्यास नहीं। वह मति दुर्मति है जिस मति में परमात्मा की तड़प नहीं। वह जीवन व्यर्थ है जिस जीवन में ईश्वर के गीत गूँज न पाये। वह धन केवल परिश्रम है, बोझा है जो धन आत्मधन कमाने में काम न आये। वह मन तुम्हारा शत्रु है जिस मन के द्वारा तुम अपने मालिक से न मिल पाओ। वह तन तुम्हारा शत्रु है जिस तन से तुम परमात्मा की ओर न चल पाओ। ऐसा जिनका अनुभव होता है वे साधक ही ज्ञान के अधिकारी होते हैं।

जो मनुष्य देह के सुख, देह की पूजा, देह की प्रतिष्ठा, देह का आराम, देह का ऐश पाने के लिए धार्मिक होता है वह अपने आपको ठगता है।

देह को एकाग्र रखने का भी अभ्यास करो। कई लोग बैठे-बैठे घुटना हिलाते रहते हैं, शरीर हिलाते रहते हैं। वे लोग ध्यान के अधिकारी नहीं होते, योग के अधिकारी नहीं होते। मन को एकाग्र करने के लिए तन भी संयत होना चाहिए।

एक बार भगवान बुद्ध परम गहरी शान्ति का अनुभव लेकर भिक्षुकों को कुछ सुना रहे थे। वे एकाएक चुप हो गये, मौन हो गये। सभा विसर्जित हो गई। किसी की हिम्मत न हुई तथागत से पूछने की। समय बीतने पर ऐसा कुछ मौका आया तब भिक्षुकों ने आदर सहित प्रार्थना कीः

"उस दिन आप गंभीर विषय पर बोलते-बोलते एकाएक चुप हो गये थे। क्या कारण था भन्ते ?"

बुद्ध ने कहाः "सुनने वाला कोई न था इसलिए मैं चुप हो गया।"

"हम थे।"

"नहीं। किसी का घुटना हिल रहा था, किसी की मुंडी हिल रही थी। तुम वहाँ न थे जहाँ होना चाहिए।"

आध्यात्मिक ज्ञान के लिए चित्त की एकाग्रता चाहिए। चित्त की एकाग्रता तब तक नहीं होगी जब तक शरीर की एकाग्रता सिद्ध न हो। तन को, मन को स्वस्थ रखो। सर्वस्व लुटाने पर भी यदि परमात्मा का वियोग होता हो तो वह सौदा खतरनाक है।

ईश्वर के लिए जगत को छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन जगत के लिए ईश्वर को कभी मत छोड़ना। ॐ......ॐ........ॐ.......

ईश्वर के लिए प्रतिष्ठा छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन प्रतिष्ठा के लिए ईश्वर को मत छोड़ना। स्वास्थ्य और सौन्दर्य को परमात्मा के लिए छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए परमात्मा को न छोड़ना। क्योंकि वह स्वास्थ्य, सौन्दर्य, प्रतिष्ठा और मित्र प्रकृति के एक जरा से झटके से छूट जाएँगे। इसलिए तुम्हारा ख्याल सदा शाश्वत परमेश्वर पर होना चाहिए। तुम्हारी मति में परमात्मा के सिवाय और किसी भी वस्तु का अधिक मूल्य नहीं होना चाहिए।

समझदार आदमी वृद्धावस्था आने से पहले ही यात्रा कर लेता है, बुद्धि क्षीण होने से पहले ही बुद्धि में ब्राह्मी स्थिति पा लेता है। घर में आग लगने से पहले ही जैसे कुआँ खुदवाया जाता है, भूख लगने से पहले ही भोजन की व्यवस्था की जाती है ऐसे ही संसार से अलविदा होने से पहले ही जीवनदाता से सम्बन्ध बाँध लेता है वही सच्चा बुद्धिमान है। उसी का जन्म सार्थक है।

जिसने मौन का अवलंबन किया है, जिसने अपने चंचल मन और तन को अखण्ड वस्तु में स्थिर करने के लिए अभ्यास किया है वह शीघ्र ही आत्मरस का उपभोग करता है।

रविदास रात न सोईये दिवस न लीजिए स्वाद।
निशदिन प्रभु को सुमरिए छोड़ सकल प्रतिवाद।।

कई रात्रियाँ सो–सोकर हमने गँवा दी। दिन में विषय–सुखों का स्वाद ले–लेकर समय गँवा दिया। दिनों दिन हम समाप्त होने को जा रहा हैं। शरीर को स्वाद दिलाते–दिलाते तुम वृद्धावस्था की खाई में गिर रहे हो। शरीर को सुलाते–सुलाते तुम मृत्यु की शैया की ओर आगे बढ़ रहे हो। अन्त में तुम लम्बे पैर पसार कर सदा के लिए सो जाओगे। फिर कुटुम्बी–आक्रन्द करेंगे फिर भी तुम जवाब नहीं दे पाओगे। डॉक्टर–हकीम तुम्हें मौत से छुड़ाना चाहेंगे फिर भी नहीं छुड़ा पाएँगे। ऐसे भी दिन आयेंगे। अतः सदा स्मरण रहे.....

रविदास रात न सोईये दिवस न लीजिए स्वाद।

एक दिन तो सोना ही है। एक दिन तो अग्नि तुम्हारे शरीर का स्वाद लेगी। एक दिन यह शरीर सड़ने–गलने के लिए कब्र में दफनाया जाएगा। शरीर कब्र में जाये उसके पहले ही उसके अहंकार को कब्र में भेज दो। शरीर चिता में जले उसके पहले ही उसे ज्ञानाग्नि में जलने दो।

मुझे वेद पुरान कुरान से क्या।
मुझे प्रभु का पाठ पढ़ा दे कोई।।
मुझे मंदिर मस्जिद जाना नहीं।
मुझे प्रभु के गीत सुना दे कोई।।

साधक की दृष्टि यही होती है। साधक का लक्ष्य केवल परमात्मा ही होता है, दिखावा नहीं। साधक का जीवन स्वाभाविक होता है, आडम्बर वाला नहीं। साधक की हिलचाल ईश्वर के लिए होती है, दिखावे के लिए नहीं। साधक का खान–पान प्रभु को पाने में सहयोगी होता है, स्वाद के लिए नहीं। साधक की अक्ल संसार से पार होने के लिए होती है, संसार में डूबने के लिए नहीं। साधक की हर चेष्टा आत्मज्ञान के नजदीक जाने की होती है, आत्मज्ञान से दूर नहीं।

साँझ पड़ी दिन आथम्या दीना चकवी रोय।
चलो चकवा वहाँ जाइये जहाँ दिवस रैन न होय।।

चकवा कहता हैः

रैन की बिछड़ी चकवी आन मिले प्रभात।

सत्य का बिछड़ा मानखा दिवस मिले नहीं रात॥

हे चिड़िया ! सन्ध्या हुई है। तू मुझसे बिछुड़ जाएगी। दूसरे घोंसले में चली जाएगी लेकिन प्रभात को मिल जाएगी। एक बात सुन। सत्य से जो मनुष्य बिछुड़ गया, मनुष्य जन्म पाकर भी उस सत्यस्वरूप परमात्मा में स्थिति नहीं की, ऐसा मनुष्य फिर सत्य से न सुबह मिलेगा, न शाम मिलेगा, न रात मिलेगा, न प्रभात मिलेगा।

परमात्मा का बलिदान देकर तुमने जो कुछ पाया है वह सब तुमने अपने आप जुल्म किया है। अपने आपसे धोखा किया है। तुम अपने आप का घात कर रहे हो। ईश्वर के सिवाय और कहीं भी अपना दिल लगा रहे हो तो तुम अपने साथ शत्रुता कर रहे हो। ॐ.....ॐ.....ॐ....

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– "हे अर्जुन ! तू अपने आपका मित्र है यदि तूने आत्मा में मन लगाया तो। अपने मन को चंचलता से रोका, अपने मन को प्रकृति के बहाव से रोका तो तू अपने आपका मित्र है और यदि तू प्रकृति के बहाव में बहा तो अपने आपका शत्रु है।"

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।

मन यदि संसार में उलझता है तो अपना सत्यानाश करता है। मन यदि परमात्मा में लगता है तो अपना एवं अपने सम्पर्क में आने वालों का बेड़ा पार करता है। इसलिए खूब सँभल–सँभलकर जीवन बिताओ। समय बड़ा मूल्यवान है। बीते हुए क्षण फिर वापस नहीं आते। निकला हुआ तीर फिर वापस नहीं आता। निकला हुआ शब्द वापस नहीं आता। सरिता के पानी में तुम एक बार ही स्नान कर सकते हो, दुबारा नहीं। दुबारा गोता लगाते हो तब तक तो वह पानी कहीं का कहीं पहुँच जाता है। ऐसे ही वर्त्तमान काल का तुम एक बार ही उपयोग कर सकते हो। यदि वर्त्तमानकाल भूतकाल बन गया तो वह कभी वापस नहीं लौटेगा। अतः सदैव वर्त्तमानकाल का सदुपयोग करो।

कौन क्या करता है इस झंझट में मत पड़ो। मेरी जात क्या है उसकी क्या जात है, मेरा गाँव कौन–सा है उसका गाँव कौन–सा है ? अरे भैया ! सब इसी पृथ्वी पर हैं और एक ही आकाश के नीचे हैं। छोड़ दो मेरे गाँव तेरे गाँव पूछने की झंझट को।

हम यात्रा में जाते हैं तब लोग पूछते हैं– "तुम्हारा कौन सा गाँव ? तुम किधर से आये हो ?" अरे भैया ! हमारा गाँव ब्रह्म है। हम वहीं से आ रहे हैं, उसी में खेल रहे हैं और उसी में समाप्त हो जाएँगे। लेकिन यह भाषा समझने वाला कोई मिलता ही नहीं है। बड़े खेद की बात है कि सब लोग इस मुर्दे की पूछताछ करते हैं कि कहाँ से आये हो। जो मि ी से पैदा हुआ, मि ी में घूम रहा है और मि ी में मिलने के लिए ही बढ़ रहा है उसी का नाम, उसी का गाँव, उसी का पंथ, सम्प्रदाय पूछकर अपना भी समय गँवाते हैं और संतों का भी समय खराब कर देते हैं।

अपना नाम, अपना गाँव सच पूछो तो एक बार भी आपने ठीक से जान लिया तो बेड़ा पार हो जाएगा। अपना गाँव आज तक तुमने नहीं देखा। अपने घर का पता तुम दूसरों से भी नहीं पूछ पाते हो, अपने को तो पता नहीं लेकिन संतों ने जो पता बताया उसको भी नहीं समझ पाते हो।

दूसरे विश्वयुद्ध की एक घटना है। युद्ध में एक फौजी को बहुत बुरी तरह चोट लग गई थी। वह काफी समय तक बेहोश रहा। साथी उस अपने अड्डे पर उठा लाये। डॉक्टरों ने इलाज किया। वह शरीर से तो ठीक हो गया लेकिन अपनी स्मृति को खो बैठा। वह अपना नाम तक भूल चुका था। उसका कार्ड, उसका मिलिटरी का बैज कहीं से भी हाथ न लगा। वह कौन है, कहाँ का निवासी है कुछ भी पता न चल पाया। मनोवैज्ञानिकों ने सुझाव दिया कि उसे अपने देश में घुमाया जाय। अपना गाँव देखते ही उसकी स्मृति जग सकती है, वह ठीक हो सकता है। व्यवस्था की गई। दो आदमी उसके साथ रखे गये। इंग्लैंड के सब स्टेशनों पर उसे गाड़ी से नीचे उतारा जाता था, स्टेशन का

साइन बोर्ड आदि दिखाया जाता, इधर–उधर घुमाया जाता। मरीज का कोई भी प्रतिभाव न दिखता तो उसे गाड़ी में बिठाकर दूसरे स्टेशनों पर ले जाते। इस प्रकार पूरा इंगलैंड घूम चुके लेकिन कहीं भी उसकी स्मृति जागी नहीं। उसके दोनों साथी निराश हो गये। वापस लौटते समय वे लोग लोकल ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। छोटा सा एक स्टेशन आया। गाड़ी रूकी। मरीज को नीचे उतारा। उसे उतारना व्यर्थ था लेकिन चलो, आखिरी दो–चार स्टेशन बाकी हैं तो विधि कर लें। फौजी को नीचे उतारा। साथी चाय–जलपान की व्यवस्था में लगे। उस फौजी ने स्टेशन को देखा, साइन बोर्ड देखा और उसकी स्मृति जाग आयी। वह तुरन्त फाटक से बाहर हो गया और फटाफट चलने लगा। मोहल्ले लाँघता–लाँघता वह अपने घर पहुँच गया। उसने देखा कि यह मेरी माँ है, यह मेरा बाप है। उसकी खोई हुई स्मृति जाग उठी।

सदगुरू भी तुम्हें अलग–अलग प्रयोगों से, अलग–अलग शब्दों से, अलग–अलग प्रक्रियाओं से तुम्हें यात्रा करवाते हैं, शायद तुम अपने असली गाँव का साइन बोर्ड देख लो, शायद तुम अपने गाँव की गली को देख लो, शायद अपना पुराना घर देख लो, जहाँ से तुम सदियों से बाहर निकल आये हो। तुम अपने उस घर की स्मृति खो बैठे हो। शायद तुम्हे उस घर का, गाँव का कुछ पता चल जाय। काश ! तुम्हें स्मृति आ जाय।

जगदगुरू श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कई गाँव दिखाये। सांख्य के द्वारा गाँव दिखाया, योग के द्वारा गाँव दिखाया, निष्काम कर्म के द्वारा गाँव दिखाया लेकिन अर्जुन अपने घर में नहीं जा रहा था। श्रीकृष्ण ने तब कहाः "हे अर्जुन ! अब तेरी मर्जी। यथेच्छसि तथा कुरू।"

अर्जुन बोलता हैः "नहीं मालिक ! प्रभु ऐसा न करो। मेरी बुद्धि कोई निर्णय नहीं ले सकती। मेरी बुद्धि अपने गाँव में प्रवेश नहीं कर पाती।"

तब श्रीकृष्ण कहते हैं– "तो फिर छोड़ दे अपनी अक्ल–होशियारी का भरोसा छोड़ दे अपनी ऐहिक बातों का, मेरे–तेरे का और जीने–मरने का ख्याल। छोड़ दे करम–धरम की झंझट को। आ जा मेरी शरण में।"

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

"सम्पूर्ण धर्मों का अर्थात सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।"

(भगवद् गीताः १८.६६)

हे अर्जुन ! डूब जा तू मेरी गहरी शान्ति में। पता चल जाएगा कि तेरा गाँव तुझमें ही है, कहीं आकाश–पाताल में नहीं है।

हमारे ऐसे दिन कब आएँगे कि हमें भी अपने गाँव और घर की प्यास पैदा हो जाये। हम भी अपने गाँव के साइनबोर्ड को देखकर प्रविष्ट हो जाएँ अपने गाँव में।

दक्षिण भारत के एक सम्राट ने अपनी नयी रानियों के कहने में आकर अपनी पुरानी रानी के पुत्र को घर से निकाल दिया। राजा का वह इकलौता पुत्र था लेकिन वह पुरानी रानी का था। नयी रानियों ने राजा को भरमाया कि वह लड़का पागल है, गलियों में गाता फिरता है। आपकी इज्जत का बखेड़ा करता है। एक ही बात को बार–बार सुनने से वह बात असर कर जाती है। राजा पहले से ही उस लड़के को गिरी हुई निगाहों से देखता था। वे गिरी हुई निगाहें दिनों दिन पक्की होती चली गई। राजकुमार को पिता की ओर से प्रेम न मिलने पर उसका प्रेम प्रभु की ओर चल पड़ा। वह टूटी फूटी

भाषाओं में प्रभु के गीत गाता था, मस्त मवालीओं जैसा कुछ गुनगुनाता था। उसके खान–पान, रहन–सहन में कोई व्यवस्था नहीं थी। जैसा आया खा लिया, जैसा आया पहन लिया, जिस किसी से मिल लिया।

कुछ साल पहले मैं सिरोही गया था। सिरोही के भूतपूर्व नरेश और उनके पुत्र ने खूब श्रद्धा के साथ मुझे अपने महल में बुलवाया। उसके पहले उसका भाई कई बार मेरे पास आ गया था। वह बड़ा सीधा सादा लड़का था, साईकिल पर आ जाता था। लोगों ने मुझे कहा कि राजा इसको पागल समझता है। हालाँकि वह पागल नहीं था लेकिन उसका स्वभाव ऐसे ही सरल था। जिस किसी से बात करने लग जाता, जहाँ–तहाँ बैठने लग जाता। वह अपने को बिल्कुल जन साधारण के भाव में रखता था। सिरोही नरेश अपने पुरानी शाही आडम्बर को सँभालने में मानता था। उसके कुटुम्बी और सिरोही के लोग समझते थे कि यह तो ऐसा ही है। राजा का भाई तो है लेकिन ऐसा ही है। वास्तव में मैं लड़का था तो ठीक लेकिन रजवाड़ी ठाठ न सँभालने के कारण लोगों ने 'ऐसा ही..... ऐसा ही....' कह रखा था।

इसी प्रकार उस पुरानी रानी के बेटे को भी राजा की नयी रानियाँ 'ऐसा ही है....' कहकर दुत्कारती थी। एक दिन राजा ने लड़के को घर से निकाल दिया। वह सड़कों पर भटकने लगा, मवालियों का संग हो गया। ईश्वर के गीतों के बजाय इधर–उधर के गीत गूँजने लगे। संग का बड़ा रंग लगता है।

राजा ने देखा कि वह लड़का मेरे राज्य में रहता है और मेरी इज्जत का कचरा होता है। राजा ने उसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। अब वह लड़का भिखमंगों की टोली में जुड़ गया। भीख माँगता है, गुजारा कर लेता है, सो लेता है। कुछ दिन एक गाँव में रहता है, गाँव वाले भीख देकर उब जाते हैं तो वह दूसरे गाँव में चला जाता है।

ऐसा करते–करते महीने बीते..... वर्ष बीते.....। एक बार रण प्रदेश के एक छोटे से गाँव में पहुँचा। पुराने जूते तो फट गये थे, कपड़े तो चीथड़े हो गये थे। शरीर काला और मैला हो गया था। छोटे से गाँव की छोटी सी होटल के आगे भीख माँगने के लिए अपनी टूटी फूटी मैली कुचैली चदरिया बिछाई।

"पच्चीस–पचास पैसे दे दो बाबू जी जूते लेने को, पच्चीस–पचास पैसे दे दो.... चाय पीने के लिए.... तुम्हारा भला होगा।"

लड़का भीख माँगता है गुजारा करता है।

इधर सम्राट बूढ़ा हो चला था। ज्योतिषियों ने बताया कि तुम्हारे को अब संतति भाग्य में नहीं है। राजवंश की परंपरा सँभालनी है तो उसी ज्येष्ठ पुत्र को बुलाया जाय। उसी को राजतिलक किया जाय और कोई चारा नहीं है। तुम्हारा कुल खत्म हो जाएगा।

राजा ने चारों और आदमी भेजे, सिपाही दौड़ाये। वजीर भी निकले। एक टुकड़ी घूमती–घामती मरूभूमि के उसी गाँव में जा पहुँची। देखा तो होटल के सामने कोई भिखारी भीख माँग रहा है। वर्षों का फासला पड़ गया था लेकिन वजीर की नजरें पैनी थी। विलक्षण बुद्धिमान वजीर ने रथ को रोका। लड़के ने हाथ फैलाया।

"एक पैसा दे दो... तेरा भला हो जायेगा। कल का भूखा हूँ.... जरा सा फाफड़े खिला दे। इस अभागे को चाय पिला दे.... तेरा कल्याण होगा।"

वजीर को भिखमंगे लड़के की आवाज में राजकुमार के स्वर सुनाई पड़े। उसके मैले चेहरे पर वे ही राजवंशी रेखायें दिखाई दीं। वह वजीर रूका, खड़ा रहा। भिखमंगा उसके आगे पैसे दो पैसे

के लिए गिड़गिड़ाने लगा। वजीर ने पूछाः
"तू कहाँ से आया है ?"
वह लड़का अपनी असलियत को भूल चुका था। बोलाः
"मैं गरीब हूँ..... भीख माँगकर आपकी दया से गुजारा करता हूँ.....।"

वजीर उससे पूछते-पूछते आखिर निर्णय पर आ गया कि यह वही राजकुमार है जिसकी खोज में मैं निकला हूँ। मेरे सम्राट का यह वही प्रथम पुत्र है जिसको देखने के लिए सम्राट अब लालायित है। वजीर बोलाः

"तुम तो फलाने राज्य के राजकुमार हो और फलाने सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र हो। सम्राट तुम्हें राजतिलक करने के लिए उत्सुक हैं। तुम चलो मेरे साथ।"

राजकुमार की पुरानी स्मृति जाग उठी। वह बोलाः

"मेरे स्नान के लिए गंगाजल मंगवाओ। पहनने के लिए वस्त्र-आभूषण की तैयारी करो। जाने के लिए सुन्दर रथ की सजावट करो।"

एक सेकेंड में भिखारी की सारी दरिद्रता गायब हो गई। सारे भिक्षापात्र व्यर्थ हो गये। उसी समय वह अपने सम्राटपने का अनुभव करने लगा।

वह राजा तो रानियों के चक्कर में आ गया था। इस राजकुमार को घर से और राज्य से निकाल दिया था। बाद में राजा किसी रानी के चक्कर में नहीं आये। वे संतरूपी वजीर को तुम्हारे पास भेजते हैं। तुम विषयों की भीख कब तक माँगते रहोगे ? मुझे धन दे दो, मुझे मकान दे दो, मुझे कुर्सी दे दो, मुझे सत्ता दे दो, मुझे सुहाग दे दो, मेरी शादी करवा दो, मुझे संतान दे दो.... तुम्हारी इस प्रकार की भीख सुनकर संतरूपी वजीर भीतर ही भीतर बड़े दुःखी होते हैं कि अरे ! परमात्मा का प्यारा पुत्र और इस हालत में ?

तुम सब परमात्मा के प्यारे पुत्र ही हो।

सम्राट का पुत्र तो दस-बारह साल से भीख माँगता था इसलिए थोड़े ही वचनों से वजीर की बात पर विश्वास कर लिया और अपने राज्य को सँभाल लिया। तुम सदियों से माँगते आये हो इसलिए संतरूपी वजीर के वचनों को नहीं मान रहे हो। तुम सन्देह करते हो कि आत्मा-परमात्मा है ! अच्छा ! साँई कहते हैं तो ठीक है लेकिन मुझे नौकरी में प्रमोशन मिल जाय।

संत कहते हैं- "अरे चल, मैं तुझे सारे विश्व का सम्राट बना देता हूँ....।"

"साँई ! आपकी बात तो..... ठीक है, लेकिन आज मेरा इतना काम हो जाय, कृपा करो.....।"

कब तक तुम कंकड़ और पत्थर माँगते रहोगे ? कब तक कौड़ियाँ और तिनके बटोरते रहोगे ? ईश्वर के राज्य के सिवाय, परमात्मा के पद के सिवाय आज तक तुमने जो बटोरा है और आज के बाद तुम जो बटोरोगे, आज तक तुमने जो जाना है और आज के बाद जो जानोगे, आज तक तुमने जो संसारी चीजें पायी हैं और आज के बाद जो संसार के मित्र बनाओगे, मृत्यु के एक ही झटके में वे सब छूट जाएँगे।

दरिद्रता के पात्र तुम कब तक सजाये रखोगे ? भिक्षा की चीज तुम कब तक अपने पास रखोगे। छोड़ो यह सब। दरिद्रता के वस्त्रों को, मैले कुचैले चीथड़ों का उतार फैंको। ठुकरा दो भिक्षा के पात्रों को। शिवोऽहम् का गान गूँजने दो। मैं आत्मा परमात्मा हूँ.... मैं अपने घर की ओर कदम बढ़ाऊँगा... इस प्रकार अपनी स्मृति को जगाओ, दूसरा कुछ नहीं है। परमात्मा को लाना नहीं है, परमात्मा के सुख को पाना नहीं है, जन्म-मरण के चक्करों को किसी हथौड़े से तोड़ना नहीं है। केवल अपनी आत्म-स्मृति को जगाओ, बस। और कुछ करना नहीं है।

तुम केवल परमात्मा की हाँ में हाँ मिलकर देखो। गुरू की हाँ में हाँ मिलाकर तो देखो, फिर पाओगे कि तुम कितने महान् हो !

गुरू तुमसे कहते हैं कि तुम अमृतपुत्र हो तो तुम क्यों इन्कार करते हो ? गुरू कहते हैं कि तुम देह नहीं हो तो तुम क्यों अपने को देह मानते हो ?

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशोऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥

'हे अर्जुन ! शरीर रूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है।'

(भगवद् गीताः १८.६१)

भगवान कहते हैं कि सबके हृदय में मैं ज्यों का त्यों विराजमान हूँ। लेकिन सब मयारूपी यंत्र से भ्रमित हो रहे हैं।

माया का अर्थ है धोखा। धोखे के कारण हम दीन-हीन हुए जा रहे हैं। 'हे धन ! तू कृपा कर.... सुख दे। हे कपड़े ! तू सुख दे। हे गहने ! तू सुख दे।'

अरे ! ये जड़ चीजें हैं, तुम्हें कब सुख देंगी ? कपड़े न हों तो परवाह नहीं, गहने न हों तो परवाह नहीं। खाने का न हो तो भी परवाह नहीं। खाकर भी मरना है और बिना खाये भी मरना है इस शरीर को। तुम्हारे हृदय में परमात्मा के गीत हों, बस। इतनी काफी है। इसके सिवाय और सब कुछ भी हो गया तो भी व्यर्थ है।

एक बार तुम गुरू की बात मानकर तो देखो, एक बार तुम छलांग लगाकर तो देखो ! सौदा मंजूर न हो तो सौदा वापस कर देना भैया !

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

संयम से ही सफलता

ब्रह्माजी ने जब आँख खोली तो भगवान विष्णु की विचित्र रचनाओं पर बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगेः 'यह सब क्या है ? कैसे हुआ ?'

ब्रह्माजी ज्यों-ज्यों सोचते गये त्यों-त्यों उनका मन गहरा चलता गया। भीतर से आवाज आयीः तप.... तप..... तप..... (अर्थात् तप करो)

तप करने का मतलब है कि इन्द्रियों को मन में लीन करो। मन को बुद्धि में लीन करो। बुद्धि को परिश्रम नहीं होगा। बुद्धि को शान्ति मिलेगी तो वह शान्त स्वरूप परमात्मा में टिकेगी। शान्त स्वरूप परमात्मा में टिकने से मति का गाढ़ापन हो जाता है। यदि मति हल्की वस्तुओं में उलझती है तो छीछरी हो जाती है।

पीपल का पत्ता हल्का-सा है। थोड़ी सी हवा लगती है तो वह फड़कता रहता है। सुमेरू पर्वत कैसी भी आँधी में स्थिर रहता है। ऐसे ही जिसने तप किया है वह परब्रह्म परमात्मा में स्थित होता है। **सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म।** जो सत्यस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है, जिसका कभी अन्त नहीं होता उस परब्रह्म परमेश्वर में मति प्रतिष्ठित हो जाती है। परब्रह्म परमेश्वर में मति जब प्रतिष्ठित हो जाती है तो उस मति का नाम बदल जाता है, वह प्रज्ञा बन जाती है, ऋतंभरा प्रज्ञा। ऋत माने सत्य। सत्यस्वरूप परमेश्वर से भरी हुई प्रज्ञा है ऋतंभरा प्रज्ञा।

मनुष्य जब प्राण छोड़ता है, मरता है तब उसके चित्त में जैसी-जैसी वासना होती है, उसकी मति में जैसा-जैसा निश्चय होता है उसी के अनुसार उसका मन और प्राण लोक-लोकान्तर में गति करता है। जैसे, आपकी मति में निश्चय हो गया कि हम शिविर में जाएँगे, फिर चाहे उत्तरायण की ठण्ड लगे या मार्च-अप्रैल की गर्मी बरसे, हम तो शिविर में जाएँगे ही। सत्संग सुनेंगे, साधना करेंगे और जो कुछ कठिनाइयाँ होगी उन्हें सहेंगे तो तप हो जाएगा। सत्संग-कीर्तन से आनन्द होगा और साधन से मति की शुद्धि होगी, परमात्मा के मार्ग में आगे बढ़ जाएँगे !

यह निर्णय मति ने किया कि ध्यान योग साधना शिविर में जाना है। मन ने और प्राण ने योजना बनायी कि फलानी तारीख को, फलानी गाड़ी से जाना है। हाथों ने हिलचाल की, पैरों ने यात्रा की, आँखों ने देखने का काम किया। बाद में सब काम में लग गये लेकिन प्रारंभ में निर्णय मति का था।

इन्द्रियों को जैसा मिलेगा उस प्रकार का इन्द्रियों का आकर्षण और मन का मनन बनेगा। इन्द्रियों के आकर्षण और मन के मनन का निष्कर्ष बुद्धि के आगे पहुँचेगाः अच्छा हुआ कि बुरा हुआ..... दूसरी बार यह करेंगे, यह नहीं करेंगे....यह लाएँगे, यह नहीं लाएँगे......आदि। मति में अगर अच्छे संस्कार हैं, मति अगर तप से युक्त है तो वह मन इन्द्रियों की अच्छी बात को हाँ बोलेगी और घटिया बात को काटकर फेंक देगी। मति घटिया है तो वह मन इन्द्रियों की घटिया बात को हाँ बोल देगी और बढ़िया बात की ओर ध्यान नहीं देगी।

तुम्हारे पास समाचार तो लाती हैं इन्द्रियाँ। आँख दृश्य के समाचार भरती है, कान शब्द के समाचार भरते हैं, नाक दुर्गन्ध-सुगन्ध के समाचार भरता है, जीभ रस का समाचार भरती है। मन ये सब समाचार लेकर मति के पास जाता है। मति में अगर तप है तो वह सारासार का विवेक करती है। मति में अगर तप नहीं है तो वह मन इन्द्रियों को जो अच्छा लगे वही निर्णय देती है। ऐसा करते-करते मति मन्द हो जाती है। चपरासी और कारकून अपने को जैसा अच्छा लगे वैसा साहब से काम करवाते रहे, कागजों पर साहब के हस्ताक्षर करवाते रहे तो साहब कभी न कभी उनकी जाल में फँस मरता है।

ऐसे ही मन–इन्द्रियों की साहब मति देवी मन–इन्द्रियों की बातों में आकर फँसती है। वह साहब तो फँसता है तब नौकरी गँवाता है, घर बैठता है लेकिन यह मति देवी चौरासी लाख योनियों की जेल भोगती है। जब देखने, सुनने, चखने, भोगने की वासना मति ने स्वीकार कर ली तो मति का स्वभाव हो जाता है कि अभी वह चखना है, यह खाना है, यह भोगना है। ऐसा करते–करते जीवन पूरा हो जाता है फिर भी कुछ न कुछ करना–भोगना, खाना–पीना बाकी रह जाता है।

जब प्राण निकलते है तब भोग की वासनायुक्त मति में जिस भोग का आकर्षण होता है उसी प्रकार के वातावरण में वह फिर से जन्म लेती है। वही भोग भोगते–भोगते दूसरे संस्कार संचित होते रहते हैं। एक वासना मिटी न मिटी वहाँ दूसरी खड़ी हो जाती है।

जैसे, कोई सोचता है कि तीन घण्टे का समय है। चलो, सिनेमा देख लें। सिनेमा में दूसरी सिनेमा के एवं दूसरी कई चीजों के विज्ञापन भी दिखाये जाते हैं। इससे एक सिनेमा देखते–देखते दूसरी सिनेमा देखने की एवं दूसरी चीजें खरीदने की वासना जाग उठती है। वासनाओं का अन्त नहीं होता। वासनाओं का अन्त नहीं होता। इसलिए यह जीव बेचारा परमात्मा तक नहीं पहुँच पाता। वासना से ग्रस्त मति परमात्मा में प्रतिष्ठित नहीं हो पाती। मति परमात्मा में प्रतिष्ठित नहीं होती है तो जीव जीने की और भोगने की वासना से आक्रान्त रहता है।

जो चैतन्य जीने और भोगने की इच्छा से आक्रान्त रहता है उसी चैतन्य का नाम जीव पड़ गया। वास्तव में जीव जैसी कोई ठोस चीज नहीं।

जीव ने अच्छे कर्म किये, सात्त्विक कर्म किये, भोग भोगे तो सही लेकिन ईमानदारी से, त्याग से, सेवाभाव से, भक्ति से अच्छे संस्कार भी सर्जित किये, परलोक में भी सुखी होने के लिए दान–पुण्य किये, सेवाकार्य किये तो उसकी मति में अच्छे सात्त्विक सुख भोगने की इच्छा आयेगी। वह जब प्राण त्याग करेगा तब सत्त्वगुण की प्रधानता रहेगी और वह स्वर्ग में जाएगा।

जीव को अगर हल्के सुख भोगने की इच्छा रही तो वह नीचे के केन्द्रों में ही उलझा रहेगा। मानो उसे काम भोगने की इच्छा रही तो मरने के बाद उसे स्वर्ग में जाने की जरूरत नहीं, मनुष्य होने की भी जरूरत नहीं। उसकी शिश्नेन्द्रिय को भोग भोगने की अधिक–से–अधिक छूट मिल जाय ऐसी योनि में प्रकृति उसे भेज देगी। शूकर, कूकर, कबूतर का शरीर दे देगी। उस योनि में एकादशी, व्रत, नियम, बच्चों को पढ़ाने की, शादी कराने की जिम्मेदारी आदि कुछ बन्धन नहीं रहेंगे। जीव वहाँ अपने को शिश्नेन्द्रिय के भोग में खपा देगा।

इस प्रकार जिस इन्द्रिय का अधिक आकर्षण होता है उस इन्द्रिय को अधिक भोग मिल सके ऐसे तन में प्रकृति भेज देती है। क्योंकि तुम्हारी मति उस सत्यं ज्ञानं अनंतं ब्रह्म से स्फुरी थी इसलिए उस मति में सत्य संकल्प की शक्ति रहती है। वह जैसी इच्छा करती है, देर सवेर वह काम होकर रहता है।

इसलिए हमें सावधान रहना चाहिए कि हम जो संकल्प करें, मन–इन्द्रियों की बातों पर जो निर्णय दें वह सदगुरू, शास्त्र और अपने विवेक से नाप–तौलकर देना चाहिए। विवेक विचार से परिशुद्ध होकर इच्छा को पुष्टि देने या न देने का निर्णय करना चाहिए।

इच्छा काटने की कला आ जाएगी तो मन निर्वासनिक बनने लगेगा। मन निर्वासनिक होगा तो बुद्धि निश्चिन्त तत्त्व परमात्मा में टिकेगी। मन में अगर हल्की वासना होगी तो हल्का जीवन, ऊँची वासना होगी तो ऊँचे लोक–लोकान्तर का जीवन और मिश्रित वासना होगी तो पुण्य–पाप की खिचड़ी खाने के लिए मनुष्य शरीर मिलेगा। सत्संग और तप करके आत्मा–परमात्मा विषयक ज्ञान पा ले तो सबसे ऊँचा जीवन बन जाए। प्रारंभ में यह कार्य थोड़ा कठिन लग सकता है लेकिन एक बार आत्मा–

परमात्मा का ज्ञान पा ले तो मति को, मन को, इन्द्रियों को जो शान्ति, आनन्द और रस मिलता है वह रस, शान्ति और आनन्द इहलोक में तो क्या, स्वर्गलोक में और ब्रह्मलोक में भी नहीं मिलते। ब्रह्मलोक में वह सुख नहीं जो ब्रह्म परमात्मा के साक्षात्कार में है।

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशेभ्यः।

उस देव को जानने से जीव सारे पाशों से, सारी जंजीरों से मुक्त हो जाता है।

मनुष्य जन्म में ऐसी मति मिली है कि इससे वह भूत का, भविष्य का चिन्तन–विचार कर सकता है। पशु तो कुछ समय के बाद अपने माँ–बाप को भी भूल जाते हैं, भाई–बहन को भी भूल जाते है और संसार व्यवहार कर लेते हैं। मनुष्य की मति में स्मृति रहती है।

इन्द्रियाँ तुम्हें संसार की ओर आकर्षित करेंगी लेकिन मति परिणाम का विचार करेगी। मति का आदर करोगे तो विकारों में से निर्विकारिता की ओर जाना बिल्कुल जरूरी दिखेगा। मति का आदर नहीं करोगे, मन–इन्द्रियाँरूपी चपरासी और कारकूनों के कहने में मति को बहाते रहोगे तो जगत सच्चा लगेगा। जगत सच्चा लगेगा तो जगत के भोगों में आकर्षण होगा। जगत के भोगों में आकर्षण होने से राग–द्वेष पनपेंगे। राग–द्वेष पनपने से इच्छा, भय, क्रोध, अशान्ति, जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि बने ही रहेंगे। अगर मति का आदर करोगे तो मति परिणाम का विचार करेगी। परिणाम का विचार करोगे तो मति मन को, इन्द्रियों को खाने–पीने की, देखने सुनने की इजाजत तो देती है लेकिन औषधवत्। खाना पीना, देखना–सुनना आदि सब औषधवत् हो जाय तो इन्द्रियों और मन का परिश्रम कम हो जाता है। उससे भी मति को थोड़ी पुष्टि मिलती है। ज्यों–ज्यों मति को पुष्टि मिलती है त्यों–त्यों मति देखने–सुनने आदि की इच्छाएँ कम करके अपने आप में तृप्त रहती है। तृप्त मति की योग्यता बढ़ जाती है। योग्यता बढ़ जाती है तो मन और इन्द्रियाँ मति के आधीन हो जाते हैं।

मनुष्य जन्म में ही ऐसी अवस्था आ जाती है कि जब चाहा तब इन्द्रियों को समेटकर मन में ले आये, मन को समेटकर परमात्मा में गोता मार दिया।

दिले तस्वीरे है यार.....
जबकि गरदन झुका ली, मुलाकात कर ली।

जब चाहा, आत्मसुख पा लिया।

मति में आत्मसुख पाने की आदत पड़ जाती है तो जब शरीर छूटता है तब मति में, अन्तःकरण में कोई वासना नहीं रहती। जब वासना नहीं रहती तो प्राण लोक–लोकान्तर में जाने के लिए उत्क्रमण नहीं करते। अभी तुम्हें चाय पीने की या कुछ खाने पीने की वासना जाग जाय तो तुम यहाँ से खिसक जाओगे। जब कोई वासना नहीं है तो भाग–दौड़ करने की जरूरत क्या है? वासना जोर करती है तो आदमी की नजर इधर उधर जाती है। वह बेईमानी भी करता है, पैसे भी खर्च करता है। सब वासना के लिए ही करता है। जिसकी मति में कोई वासना नहीं होती उसकी मति परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है।

तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठति।
वह साधक जीते जी सिद्ध पद को पा लेता है।
ज्ञानीनाम् प्राणाः न उत्क्रामन्ते–अत्रैव प्रवीलियन्ते॥

जिनको आत्मा, परब्रह्म परमात्मा का सुख मिल गया है, आत्म–साक्षात्कार हो गया है ऐसे ज्ञानी के प्राण देहोत्सर्ग के बाद उत्क्रमण नहीं करते हैं। शरीर का प्रारब्ध पूरा होते ही स्थूल शरीर पाँच भूतों में लीन हो जाता है, सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म भूतों में लीन हो जाता है। आत्मा तो पहले से ही परब्रह्म परमात्मा में मिली हुई है। वह तो आत्म–साक्षात्कार के दिन ही सत् चित् आनन्दस्वरूप, आकाश भी

अत्यन्त सूक्ष्म परब्रह्म परमात्मा से एक हो गई थी। केवल देह की बाधा थी। प्रारब्ध ने देह की बाधा को निवृत्त कर दिया। ज्ञानी व्यापक ब्रह्म हो गया।

अब हमारे हिस्से क्या कर्त्तव्य आता है ?

हमारे हिस्से आता है कि हम मन और इन्द्रियों का अधिक आदर न करें। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा हैः

देखिये सुनिये गुनिये मन माँही।
मोहमूल परमारथ नाँही॥

देखने, सुनने और विचार करने में जो आता है वह सब मोहमूलक है। वह परमारथ माने वास्तविक सत्य नहीं है।

पतंगे को दिये में सत्य सुख दिखता है और वह उसमें कूदकर जल मरता है। मछली को काँटे में सत्य सुख दिखता है और वह फँस मरती है। हाथी को कृत्रिम हथिनी में सत्य सुख दिखता है और वह खड्डे में जा गिरता है, सदा के लिए बन्दी हो जाता है। भौंरे को कमल में सत्य सुख दिखता है और वह वहीं लिप्त रहता है। शाम होते ही कमल की पंखुड़ियाँ मुँद जाती हैं, भ्रमर कैद हो जाता है। हालाँकि लकड़ी में भी छेद करने वाले भौंरे में कमल की कोमल पँखुड़ियाँ छेदने की ताकत है लेकिन प्रमाद में सुख का एहसास करता हुआ पड़ा रहता है। इन्द्रियों के आकर्षण में फँसा रहता है। हाथियों का झुण्ड आता है, तालाब में उतरकर कमल को उखाड़ फेंकता है, पैरों तले कुचला जाता है, मारा जाता है।

ऐसा नहीं है कि हम बिल्कुल अज्ञानी हैं। क्या अच्छा है क्या बुरा है यह सब लोग जानते हैं। क्या पुण्य है क्या पाप है यह भी हम काफी हिस्से में जानते हैं। क्या करना चाहिए क्या नहीं करना चाहिए यह भी हम लोग जानते हैं। फिर भी जो नहीं करना चाहिए वह करते हैं। उसके पीछे एक ही कारण है सुख का लालच। कुछ काम भयभीत होकर भी करने पड़ते हैं– लोग क्या बोलेंगे ? समाज क्या कहेगा ?

सुख के लालच और दुःख के भय ने अन्तःकरण को कमजोर कर दिया। उन्होंने मति को अपने नियंत्रण में ला दिया। मन और इन्द्रियाँ मति की कमजोरी को जान लेते हैं। इससे उसको घसीटते रहते हैं। मन और इन्द्रियाँ नीति का और मुक्ति का आदर नहीं करते, सुख का लालच रखते हैं, मति भी सुख के लालच में फिसलने लगती है, दुःख के भय से भयभीत होती है तो न चाहते हुए भी मति को हल्के निर्णय करने पड़ते हैं, न चाहते हुए हल्के कामों में जुड़ना पड़ता है। इससे मति का स्वभाव हल्का बन जाता है।

ब्रह्मा जी को प्रेरणा हुई किः 'तपः....।'

तप करने से तेज बढ़ेगा, शक्ति बढ़ेगी। तप करने से 'स्व' का ख्याल आयेगा कि मैं इन मन इन्द्रियों का गुलाम नहीं हूँ। शरीर के मिटने से भी मैं नहीं मिटता हूँ। न मरने का डर, न जीने का लालच, न भोगने की वासना। ये तीनों झंझटें जब निकल जाती हैं तब जीव अपने वास्तविक आत्मा, परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है।

मम दरशन फल परम अनूपा।
जीव पावहिं निज सहज स्वरूपा॥

भगवान राम कहते है कि मेरे दर्शन का परम फल क्या है ? परम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को, जो सत् चित् आनन्दस्वरूप है, जो रोम–रोम में रमा हुआ है उस राम को पा लेता है।

थका, हारा, नौकरों से सताया हुआ सेठ अपने निकट के मित्र सेठ से मिलता है तो उसका बल बढ़ जाता है। ऐसे ही जब हम जप करते हैं, तप करते हैं, ध्यान करते हैं, तो सेठों का भी सेठ, सारे विश्व का मालिक जो हमारा आत्मा होकर बैठा है उस विश्वेश्वर का सहयोग मति को मिल जाता है। मति में शक्ति आ जाती है और वह मुक्ति के मार्ग पर चल पड़ती है।

तपःषु सर्वेषु एकाग्रता परं तपः।
सब तपस्याओं में एकाग्रता परम तपस्या है।

हम जब इन्द्रियगत ज्ञान का आदर करते हैं तब हम पर विकारों का हमला अवश्य होता है। हम जब बुद्धिगत ज्ञान का आदर करते हैं तब हम विकारी सुखों का आदर नहीं करते, विकारी वस्तुओं का उपयोग करेंगे। जैसे कहीं जाना है तो आँख से मार्ग देख लिया, शरीर को टिकाना है तो तन्दुरूस्ती का ख्याल करके खा लिया, सुनना है तो सार–सार बात सुन ली, बाकी पर ध्यान नहीं दिया। इससे हमारी शक्ति बच जाती है।

बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से इन्द्रियों का, मन का झंझट कम हो जाता है और बुद्धि को कम परिश्रम पड़ता है। बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से हमारा विवेक बढ़ता जाता है। विवेक बढ़ने से वैराग्य बढ़ेगा। संसार से राग उठ जायगा। देखेंगे कि संसार की कितनी वस्तुओं को सँभाला..... आखिर सब छोड़कर मरना है तो फिर बहुत पसारा क्यों करना? शरीर को इतना अधिक खिलाया पिलाया तो बीमारी हुई। अतः संयम से खाना चाहिए। इन आँखों को आज तक कितना सारा दिखाया लेकिन अभी तृप्ति नहीं हुई। कानों को कितना सुनाया ? जीभ को कितना खिलाया ? आखिर क्या? ऐसा विवेक जागेगा। विवेक जागेगा तो वैराग्य आयगा।

बुद्धि जब परिणाम का विचार करती है तब उसका परिश्रम कम होता है। उसको परमात्मा में प्रतिष्ठित होने का, समता में आने का समय मिलता है।

भगवान को बुलाना भी नहीं है और भगवान को प्रकट भी नहीं करना है। भगवान हाजराहजूर हैं।

आद् सत् जुगात् सत् है भी सत् नानक ! होसे भी सत्।

वर्षा की ऋतु में बादलों के कारण सूरज नहीं दिखता है। सूरज को बुलाना भी नहीं है, प्रकट भी नहीं करना है। केवल हवाएँ चलें, बादल बिखरें, सूरज दिख जाएगा। सूरज तो पहले से ही है और शाम तक दिखेगा।

यह आकाश का सूरज तो शाम तक दिखेगा लेकिन आत्म–सूर्य के लिए तो कोई शाम ही नहीं है। परमात्मारूपी सूर्य से हम कभी अलग नहीं होते। उस सत्यस्वरूप परमात्मा में बुद्धि प्रतिष्ठित हो जाय, बस। सागर में तरंग विलय हो जाती है तो तरंग सागर बन जाती है। तरंग पानी तो पहले से ही था, सागर पहले से ही था। ऐसे ही जीव ब्रह्म तो पहले से ही था, सागर पहले से ही था। ऐसे ही जीव ब्रह्म तो पहले से ही था लेकिन इस बेचारे जीव को इन्द्रियों के आकर्षणों ने, जगत की सत्यता ने, बेवकूफी ने कई जन्मों तक भटकाया।

जीव को माता का गर्भ सीधा ही मिल जाता है ऐसी बात नहीं है। कई जीव माता के गर्भ में वीर्यबिन्दु के रूप में गिरते है लेकिन बाथरूम के द्वारा नालियों में बह जाते हैं। क्या दुर्दशा होती है जीवों की ? इस पृथ्वी पर जितने हम लोग घूमते हैं इससे अधिक मनुष्य जीव नालियों में बहते होंगे। इस बात को कोई भी तार्किक या नास्तिक भी अस्वीकार नहीं कर सकता है।

'मेरे दो बेटे हैं।'

'कैसे तुम्हारे बेटे ?'

'क्योंकि मेरे शरीर से पैदा हुए हैं।'

'तुम्हारे शरीर से पैदा क्या हुए, केवल गुजरे।'
हम लोग अन्न–जल–फल आदि खाते हैं। उसमें स्थित जीव वीर्य के द्वारा पत्नी के गर्भ में जाते हैं। कई जीवों में से एक जीव बेटा होकर जन्म लेता है, बाकी के जीव नाली में बह जाते हैं। वीर्य के एक बिन्दु में करीब तीन हजार जीव होते हैं। माता के उदर में जो जीव नहीं टिक पाते वे कहाँ जाएँगे ? रज–वीर्य के रूप में बहकर बाथरूम के द्वारा नाली में जाएँगे।

ऐसी कितनी ही दुःखद अवस्थाएँ हम लोग कितनी ही बार भोग चुके हैं। यह बात अगर मति को समझ में आ जाय तो मति में संसार का आकर्षण कम हो जाएगा। फिर राग नहीं रहेगा। राग नहीं रहेगा तो द्वेष भी नहीं रहेगा। राग में कोई विघ्न डालता है तो उससे द्वेष होता है। बड़ा आदमी विघ्न डालता है तो उससे भय होता है, छोटा आदमी विघ्न डालता है तो क्रोध होता है, बराबर का आदमी विघ्न डालता है तो उससे द्वेष होता है। जब वासना ही नहीं है तो भय कहाँ ? वासना ही नहीं तो उद्वेग कहाँ ? वासना ही नहीं तो द्वेष कहाँ ? निर्वासनिक मनुष्य के राग, द्वेष, क्रोध, भय, उद्वेग आदि सब शिथिल हो जाते हैं। जब राग, द्वेष, भय, उद्वेग, चिन्ता आदि सब शिथिल हो जाते हैं। तो जीव निश्चिन्त हो जाता है। वस्तु मिलेगी कि नहीं मिलेगी.... काम होगा कि नहीं होगा.... मेरा आखिर क्या होगा ? पहले यह चिन्ता थी। जीव जब निर्वासनिक हो जाता है तो हिम्मत आ जाती है कि हो होकर मेरा क्या होगा ? जो होगा सो शरीर, मन, इन्द्रियों को होगा, मेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। शरीर, मन, इन्द्रियों का कितना भी लालन–पालन करो, आखिर तो छूटना ही है। रोटी तो भगवान देता ही है और साथ में कुछ ले जाना नहीं है। फिर चिन्ता किस बात की ? जो बना है और जो बनाएँगे वह सब मृत्यु के एक झटके में छोड़ना है। मति अगर यह दृढ़ निश्चय कर ले तो आदमी की चिन्ता टिक नहीं सकती। आदमी निश्चिन्त होकर मति में टिकेगा तो जिस बात का वह चिन्तन करता है वह काम अपने आप हो जाएगा।

आदमी जितना निश्चिन्त होता है उतनी उसकी मति परमात्मा में टिकती है। मति जितनी परमात्मा में टिकती है उतनी प्रकृति और लोग अनुकूल होने लगते हैं। यही कारण है कि जो दुरात्मा होता है उसकी इच्छाएँ जल्दी पूरी नहीं होती। थोड़ी–बहुत इच्छाएँ पूरी होती हैं फिर भी वह दुःखी का दुःखी ही रहता है। जो धर्मात्मा है, पवित्रात्मा है उसकी ज्यादा इच्छाएँ होती नहीं जो होती हैं वे तो पूरी हो ही जाती हैं, जो उसके नाम की मनौती मानते हैं उन लोगों की इच्छाएँ भी कुदरत पूरी कर देती है।

तप से ही जगत को धारण किया जाता है, तप से ही जगत चलता है और तप से ही जगत के आकर्षण से छूटकर जगदीश्वर को प्राप्त किया जाता है। अतः हमारे जीवन में तप का स्थान होना चाहिए, तप के लिए नियत समय रखना चाहिए। बाईस घण्टे भले व्यवहार एवं अन्य प्रवृत्ति के लिए रखो लेकिन ज्यादा नहीं तो कम से कम दो घण्टे तप करो, ध्यान करो। छः घण्टे नींद करो, आठ घण्टे नौकरी ? धन्धा करो, फिर भी दस घण्टे बचते हैं। उन दस घण्टों में सत्कर्म और तप आदि करो, सेवा करो, सत्संग करो, स्वाध्याय करो लेकिन कम से कम दो घण्टों तप करो, ध्यान करो।

पानी को गर्म किया जाता है तो वह वाष्प बन जाता है और उसमें १३०० गुनी शक्ति आ जाती है। ऐसे ही तप से, ध्यान से मति सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम बन गई तो परमात्मा की प्राप्ति हो जाएगी। ऐसी शक्तिशाली मति आत्म–सूर्य के आगे आये हुए बादलों को हटा देगी। बादल फटते हीः

डीठो मुख शहनशाह जो हींयरें थ्योमकरार।
लथा रोग शरीर जा मुझे सतगुर जे दीदार॥

अविद्या–अज्ञान के बादल हटते ही ब्रह्मविद्या के बल से मति परब्रह्म परमात्मा का प्रसाद पा लेती है। उस प्रसाद से जीव के सारे दुःख दूर हो जाते हैं। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, माताओं के गर्भों में जाना–आना तो दूर हो जाएगा, इस जन्म के कर्म भी जलकर भस्म हो जाएँगे।
भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरूतेऽर्जुन।
ज्ञानग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरूते तथा॥

'हे अर्जुन ! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देती है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।'

(भगवद् गीताः ४.३७)

जैसे सूर्य को दीमक नहीं लगती ऐसे ही जब आत्मसूर्य से एक होकर मति संसार में जीती है तो उसे कर्मों की दीमक नहीं लगती। पहले के कर्म ज्ञानाग्नि से जलकर भस्म हो जाते हैं और नये कर्म बनते नहीं हैं। मति में कर्त्ताभाव नहीं रहता। मति अब वास्तविक सत्ता को जानती है कि सब परमेश्वर में हो रहा है। मति को अपनी वासना नहीं है।
अष्टावक्र मुनि ने जनक से कहाः

अकर्तृत्वं अभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।
तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः॥

'जब पुरूष अपने आत्मा के अकर्त्तापने को, अभोक्तापने को मानता है तब उसकी सम्पूर्ण चित्त की वृत्तियाँ निश्चय करके नाश होती है।'

(अष्टावक्रगीताः १८.५१)

चित्त की वृत्तियों से ही जीव को जन्म–मरण हो रहे हैं, चित्त की वृत्तियों से ही राग–द्वेष हो रहे हैं, चित्त की वृत्तियों से ही भय–शोक हो रहे हैं, चित्त की वृत्तियों से ही काम–क्रोध हो रहे हैं, चित्त की वृत्तियों से ही लोभ–मोह हो रहे हैं, चित्त की वृत्तियों से ही परेशानियों का प्रादुर्भाव हो रहा है। जब चित्तवृत्तियाँ क्षीण हो जाएँगी या बाधित हो जाएँगी तब जीव परम शांति को प्राप्त होगा।
चित्तवृत्तियाँ क्षीण होना या बाधित होना माने क्या ?

नारियल की रस्सी दिख रही है। उसे जला दो। फिर उसका आकार तो वैसा ही दिखेगा लेकिन वह रस्सी अब बाँध नहीं सकेगी। मरूभूमि में दूर से पानी दिख रहा है। पास में जाकर देख लो तो रेत ही रेत है, पानी का नामोनिशान नहीं है। अब अपनी गद्दी पर पुनः बैठकर देखो तो वैसा ही पानी दिखेगा लेकिन पहले वाला आकर्षण नहीं रहेगा। ठूँठे में किसी को चोर दिखता है किसी को साहूकार दिखता है लेकिन बैटरी जलाकर देख लिया कि यह ठूँठा है। न चोर है न साहूकार है।

ऐसे ही जगत में न सुख है न दुःख है, न पुण्य है न पाप है, न अपना है न पराया है। एक ही परब्रह्म परमात्मा का सब विवर्त है। मति ने ऐसा जान लिया तो जगत का न आकर्षण होगा न द्वेष होगा, न राग होगा न द्वेष होगा। जो किसी से राग नहीं करता वह सबसे प्रीति करता है। जो किसी से राग नहीं करेगा वह किसी से द्वेष भी नहीं करेगा। जो सबसे प्रीति करता है वह किसी में प्रीति नहीं करता।

दुकानदार मोहवश परिवार से प्रीति करता है तो ग्राहकों का धन खींचता है। जिसको अपने परिवार से मोहजन्य प्रीति नहीं है वह ग्राहकों का धन खींचने में नहीं लगेगा। वह सारे विश्व का प्रेमपात्र बन जाएगा। सारे विश्व का प्रेमपात्र बन जायेगा तो कुटुम्बियों का भी प्रेमपात्र बन जाएगा। उनका भी कल्याण होगा।

लोगों को लगता है कि हम बच्चों से प्रेम करते है, पत्नी से प्रेम करते हैं। वास्तव में हम वासना से प्रेम करते हैं, इन्द्रियों से प्रेम करते है। वासनापूर्ति में जो सहयोग करते हैं उनको अपने खिलौने बनाते हैं। पत्नी पति से प्रेम करती हुई दिखती है लेकिन वह अपनी वासना से प्रेम करती है। जब वासना से प्रेम होता है तब प्रेम के नाम से एक दूसरे का शोषण होता है। वासनारहित जब प्रेम होता है तब वह परमात्मा हो जाता है और उद्धार कर देता है।

जीव को प्रेम करने की तो आदत है, वासना है। इस प्रेम को ऊर्ध्वमुखी बनाना है। देखने की वासना है तो ठाकुरजी को देखो। किसी का होने की वासना है तो भगवान के हो जाओ। 'मैं पत्नी का हूँ.... मैं पति की हूँ...' इसके स्थान पर 'मैं भगवान का हूँ.... भगवान मेरे हैं' यह भाव बना लो। जैसे गाड़ी का स्टीयरिंग व्हील घुमाने से गाड़ी की दिशा बदल जाती है ऐसे ही अपनी अहंता और ममता को, 'मैं' और 'मेरे' पने को बदलने से बहुत सारा बदल जाएगा। 'मैं घनश्याम हूँ..... मैं पत्नी का हूँ.... मैं संसारी हूँ..... मैं गृहस्थी हूँ.......' ऐसा भान रखने से उस प्रकार की वासना और जवाबदारी रहेगी। 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं......' यह अहंता बदलने से जीवन बदल जाएगा। हम स्वयं को आत्मा मानेंगे, परमात्मा का अंश मानेंगे तो अपने में आत्मा की अहंता करेंगे, देह की अहंता मिट जाएगी। देह की अहंता मिटते ही जाति की संकीर्णता मिट जाएगी। अपने मन की मान्यताओं की संकीर्णताएँ मिट जाएगी। 'मैं भगवान का हूँ.... भगवान मेरे हैं....।' भगवान सत् चित् आनन्दस्वरूप हैं तो सुख के लिए, आनन्द के लिए हमें इन्द्रियों की गुलामी नहीं करनी पड़ेगी। इन्द्रियों का उपयोग करने की ताकत बढ़ जाएगी। इन्द्रियों की गुलामी के बजाय इन्द्रियों का उपयोग करोगे तो इन्द्रियों में जल्दी से बीमारी भी नहीं आयेगी। शरीर तंदुरूस्त रहेगा, मन-बुद्धि में लाचारी नहीं रहेगी। जब इन्द्रियों का सुख लेते हो तो बकरी बन जाते हो।

सुख आत्मा का लो और उपयोग इन्द्रियों का करो। जीवन सिंह जैसा बन जाएगा, व्यवहार और परमार्थ सब ठीक हो जाएगा।

ये सब बातें सत्संग के बिना समझ में भी नहीं आतीं, इन बातों में रूचि भी नहीं होती और इनके रहस्य हृदय में प्रकट भी नहीं होते। इसीलिए सत्संग की बड़ी महिमा है।

वशिष्ठ जी कहते हैं कि चाहे चण्डाल के घर की भिक्षा ठीकरे में माँगकर खानी पड़े और आत्मा-परमात्मा के ज्ञान का सत्संग मिलता हो तो उस जगह का त्याग नहीं करना चाहिए। राज वैभव-ऐश्वर्य हो लेकिन आत्मज्ञान न मिलता हो तो उस ऐश्वर्य और राज वैभव को लात मार दो। ये भोग शरीर तक ही सुखाभास देंगे, फिर जन्म-मरण के चक्कर में जाना पड़ेगा, नालियों में कीड़ा होकर बहना पड़ेगा। आत्मा-परमात्मा को पाने के लिए राज वैभव का त्याग करना पड़े तो भी कोई खतरा नहीं है। क्योंकि एक दिन मरकर तो सब कुछ छोड़ना ही है। मरकर, लाचार होकर छोड़ें और वासना लेकर भटकें, फिर कहीं न कहीं कैसी भी योनि में जन्म लें इससे तो जीते जी वासना मिटाकर निर्वासनिक आत्मा परमात्मा का सुख पाने का अभ्यास शुरू कर दें यह अच्छा है।

सत्संग समझने के लिए भी तप की जरूरत पड़ती है। एकाग्रता चाहिए, विवेक चाहिए। तप करने के लिए तप में रस आना चाहिए, तब मन तप करेगा। मन को जहाँ रस नहीं आता वह तप नहीं करता। इन्द्रियों से सुख लेने में मन को जल्दी रस आ जाता है, भले वह नकली हो, भ्रांति मात्र हो। मिट्टी के खिलौने का आम बारह महीनों मिलता है। बच्चा उसी में खेलता रहता है। असली आम तो केवल ऋतु में ही मिलता है, पहले कच्चा और खट्टा होता है, फिर खटमीठा होता है, फिर पकता है, पूरा समय होता है तब मीठा बनता है। खिलौने का आम तो पहले से ही पूरा पीला होता है। जगत भी एक खिलौना है। इन्द्रियों के सुख सब पहले से ही तैयार हैं रस देने के लिए लेकिन बाद में सत्यानाश

करते हैं। अंगारा चमचम चमकता है। बच्चे को वह दूर से बढ़िया खिलौना लगता है। जब हाथ डालता है तब चिल्लाता है। ऐसे ही संसार के सुख भोगे नहीं तब तक आकर्षक लगते हैं भोगते ही पछताना पड़ता है। एक बार ही नहीं कई बार पछताने के बाद भी हम लोग फिर वहीं जाते हैं क्योंकि सच्चा सुख विवेक नहीं है, सच्चे सुख का ज्ञान नहीं है। सच्चे सुख का थोड़ा बहुत विवेक है, थोड़ा बहुत ज्ञान है लेकिन उस सच्चे सुख का स्वाद लेने की क्षमता नहीं है इसलिए बार-बार हल्के स्वाद में गिर जाते हैं।

अब बात यह रही किः

मिल जाए कोई पीर फकीर।
पहुँचा दे भव पार....॥

ऐसे कोई महापुरूष मिल जाएँ तो उस तत्त्व का स्वाद दिला दें।

मन को अगर अच्छी तरह शिक्षित किया जाय तो वह हमारा बड़ा, भारी में भारी, ऊँचे में ऊँचा मित्र है। सारे विश्व में ऐसा कोई मित्र नहीं हो सकता। इसके विपरीत, मन हमारा भारी में भारी शत्रु भी है। मन जैसा शत्रु सारे विश्व में नहीं हो सकता। मन शत्रु क्यों है ?

मन अगर इन्द्रियों के विकारी सुखों में भटकता रहा तो चौरासी लाख योनियों में युगयुगान्तर तक हमें भटकना पड़ेगा। ऐसा वह खतरनाक शत्रु है।

मन मित्र कैसे है ?

मन अगर तप और परमात्मा के ध्यान की तरफ मुड़ गया तो वह ऐसा मित्र बन जाता है कि करोड़ों-करोड़ों जन्मों के अरबों-अरबों संस्कारों को मिटाकर, इसी जन्म में ज्ञानाग्नि जलाकर, आत्मा-परमात्मा की मुलाकात कराकर मुक्ति का अनुभव करा देता है।

इसलिए शास्त्र कहते हैं किः

मनः एव मनुष्याणां कारणं बन्धनमोक्षयोः।

हमारा मन ही हमारे बन्धन और मोक्ष का कारण बनता है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्मानस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

'अपने द्वारा संसार-समुद्र से अपना उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले, क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है आप ही अपना शत्रु है।'

'जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियाँ जीती हुई हैं, उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है और जिसके द्वारा मन तथा इन्द्रियाँ नहीं जीती गई हैं, उसके लिए वह आप ही शत्रु के सदृश शत्रुता में बर्तता है।'

(भगवद् गीताः ६.५.६)

जब इन्द्रियाँ और मन अनात्म वस्तुओं में सत्यबुद्धि करके सुख पाने की मजदूरी करते हैं तब वह जीवात्मा अपने आपका शत्रु है। जब मन और इन्द्रियाँ आत्मा-परमात्मा के सुख में अन्तर्मुख होती हैं तब वह जीवात्मा अपने आपका मित्र है। हम जब विकारों का सुख लेते हैं तब हम अपने आपसे शत्रुता करते हैं और जब निर्विकारी सुख की ओर आते हैं तब हम अपने आपके मित्र हैं।

भगवान कहते हैं कि अपने आपको अधोगति की ओर नहीं ले जाना चाहिए। अपने मन, बुद्धि

और इन्द्रियों को परमात्मा की ओर ले जाना चाहिए। हम जब परमात्मा के विषय में सुनेंगे, उनकी महिमा और गुण सुनेंगे, उनके नाम का जप, ध्यान आदि करेंगे तब भीतर का सुख मिलेगा। भीतर का सुख मिलेगा तो हम आपके मित्र बन गये।

भीतर का सुख मिल जाता है लेकिन विकारी सुख में गिरने की पुरानी आदत है इसलिए बार–बार उधर चले जाते हैं। इसलिए हमें विवेक जगाना चाहिए, थोड़े नियम, थोड़े व्रत ले लेने चाहिए। व्रत ले लेते हैं तो मन धोखेबाजी कम करता है। सच्चा सुख पाने का आपका संकल्प नहीं होता, उसके लिए व्रत नहीं करते इसलिए मन और इन्द्रियाँ अपने पुराने अभ्यास के मुताबिक बुद्धि को वहीं घसीट ले जाते हैं। ऋतंभरा प्रज्ञावाले महापुरूषों का संग करने से अपनी मति में, बुद्धि में शक्ति बढ़ती है।

भगवान शिवजी पार्वती से कहते हैं–

उमा संत समागम सम और न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा उपजै नहीं गावहिं वेद पुरान॥

यह भी हरि की अहैतुकी कृपा है कि हमें ऊँचे में ऊँची चीज, ब्रह्मज्ञान का सत्संग सहज में मिल रहा है। जो हल्की चीज होती है उसके लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता है। जो ऊँची चीज होती है उसके लिए परिश्रम करो, सौ रूपये कमाओ फिर दारू खरीद सकते हो। शरीर के लिए दारू बिल्कुल आवश्यक नहीं है। पानी शरीर के लिए बहुत जरूरी है और वह मुफ्त में मिल जाता है।

प्रवास पर जाते हैं तो भोजन का टिफिन घर से ले जाते हैं लेकिन भोजन से भी अधिक आवश्यक पानी घर से नहीं ले जाते। वह स्टेशन पर भी मिल जाता है। पानी के लिए भी बर्तन तो लेना पड़ता है जबकि पानी से भी अधिक आवश्यक हवा के लिए कुछ नहीं लेना पड़ता, कुछ नहीं करना पड़ता। पानी के बिना तो कुछ घण्टे चल सकता है लेकिन हवा के बिना शरीर जी नहीं सकता। ऐसी मूल्यवान हवा सर्वत्र निःशुल्क और प्रचुर मात्रा में सबको प्राप्त है।

ऐसे ही जो अत्यंत जरूरी हैं, महान हैं वे परमात्मा स्वर्ग–नरक में सर्वत्र विद्यमान हैं, केवल मति को उन्हें देखने की कला आ जाय, बस। परमात्मा को देखने की कला आ जाय तो सदा सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है।

हररोज खुशी हरदम खुशी हर हाल खुशी
जब आशिक मस्त फकीर हुआ
तो फिर क्या दिलगिरी बाबा ?

जैसे हवा सर्वत्र है ऐसे ही ज्ञानी जहाँ कभी जाएगा वहाँ उसके लिए सत् चित् आनन्दस्वरूप परमात्मा हाजिर हैं। उसके लिए इन्द्रियों और शरीर में रहते हुए मन, इन्द्रियों और शरीर के आकर्षण से जो पार है, अपने परमात्मानन्द में है, ब्रह्मानन्द में है ऐसे महापुरूष की तुलना तुम किससे करोगे ?

तस्य तुलना केन जायते।

ऐसा महापुरूष संसार की किसी भी परिस्थिति से द्वेष नहीं करता क्योंकि उसको किसी के लिए राग नहीं है तो द्वेष भी कहाँ से लायगा ? रागी को द्वेष होता है।

ज्ञानी का राग तो संसार में है नहीं। उसका राग तो परमात्मा में है और परमात्मा सब जगह मिलते हैं, परमात्मा सर्वत्र मौजूद हैं, परमात्मा ज्ञानी का अपना आपा होकर बैठे हैं। इसलिए ज्ञानी को कोई भी सासांरिक परिस्थिति का राग नहीं है। राग नहीं है तो द्वेष भी नहीं है। राग द्वेष नहीं है तो उसका चित्त सदा समाहित है।

सदा समाधि संत की आठों प्रहर आनंद।

अकलमता कोई उपज्या गिने इन्द्र को रंक॥

जिसकी वासनाओं का, अज्ञान का अन्त हो गया है उनको संत बोलते हैं। ऐसे संत इन्द्र के वैभव को भी तुच्छ गिनते हैं। ऐसा वैभव उनको प्राप्त हो गया है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सूक्ष्म वृत्ति से आत्म–लाभ

चिदाकाश चैतन्य में एक लहर उठी। उसी का नाम है माया। उसी का नाम है जीव। उसी का नाम है कलना। उसी का नाम है सुरता। उसी का नाम है वृत्ति।
अज्ञानी जीव ने उस वृत्ति को अपने में कल्प लिया।

सुख–दुःख होते हैं वृत्ति में। मान–अपमान होता है वृत्ति में। 'मैं एकान्त में जाऊँगा... योग करूँगा....' यह भी वृत्ति है। 'मैं भीड़ में जाऊँगा.... भोग भोगूँगा.....' यह भी वृत्ति है। 'मैं' को जाना नहीं।

तुम्हारी वास्तविक मैं तो न भोग भोग सकती है न योग करती है। योग और भोग ये दोनों वृत्ति में हैं।

योग भोग जा को नहीं सो विद्वान अरोग।

जिसको योग और भोग दोनों नहीं हैं, जो वृत्तियों से परे हो चुका है, जिसने अपने स्वरूप को जान लिया है वह अरोग है, बाकी के सब रोगी हैं।

सुख–दुःख होते हैं वृत्तियों में लेकिन हम मान लेते हैं अपने में। हम अपने को नहीं जानते हैं। अब क्या करना है ? अपनी वृत्ति को सूक्ष्म करके वृत्ति से ही वृत्ति को बाधित करना है। वृत्ति से निवृत्त होना है। दूसरे लाख उपाय करो, आत्मलाभ नहीं होता। आत्मलाभ तो होता है आत्मदेव को जानने से ही। आत्मदेव को जानने वाला कोई दूसरा नहीं है। जो सुखी दुःखीपना अपने में आरोपता है, जो सुखी–दुःखी होता है वही अपने असली स्वरूप को पहचान ले तो वह सुख–दुःख से परे हो जाय। फिर वह समझता है कि सुख–दुःख वृत्ति में होता है, मुझमें नहीं। सुख आया..... और गया। दुःख आया...... और गया। जो आकर जाय.... जाकर आये तो वह आने जाने वाला हुआ। आने जाने वाले को जो देखता है वह अटल है। वह अटल अपना स्वरूप है।

जैसे, आकाश में तरूवर भासते हैं, बादलों में हाथी, घोड़ा, रथ इत्यादि भासते हैं। आकाश में आ आकर चले जाते हैं ऐसे ही हमारे हृदयाकाश में भाव और क्रिया–प्रतिक्रियाओँ की संवेदनाएँ आ–आकर चली जाती हैं।

जैसे सुमेरू पर्वत के आगे राई का दाना छोटा है ऐसे ही हमारे चिदाकाश व्यापक स्वरूप के आगे यह भूताकाश भी छोटा है। यह जो सामने भूताकाश और चित्ताकाश जिससे प्रतीत होते हैं वह चिदाकाश हैं हम। हमको चित्ताकाश प्रतीत होता है। चित्त में जो विचार उठा वह हमें प्रतीत होता है। जिससे सब दिखता है । भूताकाश चित्ताकाश से छोटा है। चित्ताकाश भी हमें प्रतीत होता है तो हमसे चित्ताकाश भी छोटा है। हम हैं चिदाकाश जिसको चित्ताकाश और भूताकाश दोनों प्रतीत होते हैं।
तुम कहोगे कि हम तो भूताकाश में हैं और हमारे अन्दर चित्ताकाश है। तो भूताकाश से चिदाकाश छोटा हुआ।

नहीं.....। तुम देह को 'मैं' मानकर बोलते हो कि हम भूताकाश में हैं और हमारे भीतर चित्ताकाश है। वात्विकता यह है कि तुम्हारे भीतर दिखने वाला चित्ताकाश भूताकाश को भी आवृत्त करके बैठा है।

जैसे यह आकाश सत्संग–हॉल को ढाँककर बैठा है ऐसे ही चित्ताकाश इस भूताकाश को ढाँककर बैठा है और चिदाकाश इन दोनों को ढाँककर बैठा है। यह चिदाकाश ही परब्रह्म परमात्मा है। यह ब्रह्मविद्या सत्पात्र शिष्य अथवा सत्पुत्र के हृदय में ही ठहरती है। पुत्र भी जब गुरू की भावना से

श्रवण करे तो, पिता मानकर सुने तो नहीं।

घटाकाश को मठाकाश व्यापकर बैठा है। घड़े में जो आकाश है वह है घटाकाश। हॉल में जो आकाश है उसे समझो मठाकाश। हॉल में कई घड़े रख दो। ये सभी घटाकाश मठाकाश में समाविष्ट हो गये। ऐसे ही चिदाकाश परब्रह्म परमात्मा में कई चित्ताकाश और भूताकाश समाविष्ट हैं। सबका अधिष्ठान एक चिदाकाश है। भूताकाश से चित्ताकाश सूक्ष्म है और चित्ताकाश से भी सूक्ष्म है चिदाकाश। सूक्ष्म है इसलिए वह सबमें है। फिर भी सबका नाश होने पर भी उसका नाश नहीं होता। सब घड़ों का नाश होने से आकाश का नाश नहीं होता। सब शरीरों का नाश होने पर भी चिदाकाश का नाश नहीं होता।

छोटे से छोटे जीव जन्तु, बैक्टेरिया जहाँ जाते हैं वहाँ उन्हें हवा मिलती है क्योंकि हवा सब जगह है। ऐसे ही जहाँ भी जीव हैं वहाँ चिदाकाश उन्हें व्याप रहा है।

बस कितनी भी तेजी से भागे लेकिन वह आकाश को लेकर नहीं भागती। आकाश इतना सूक्ष्म है कि वह बस के आरपार गुजर जाता है। बस भागती है लेकिन आकाश वहीं का वहीं अपनी महिमा में स्थित रहता है। तुम घड़ा लेकर भागो तो घड़े के अन्दर जो आकाश है उसे भी लेकर भागे ऐसी बात नहीं है। आकाश तो घड़े के आरपार होकर स्थित रहता है। ऐसे ही कोई जन्मे चाहे मरे, सच्चिदानंदस्वरूप चिदाकाश ज्यों का त्यों रहता है। सूर्य के प्रकाश में बिलोरी काच कहीं भी लेकर जाओ, उससे आग पैदा कर सकते हो। बिलोरी काच की अपेक्षा सूर्य व्यापक है। ऐसे ही सूर्यों का सूर्य जो चिदाकाश परमात्मा है वह व्यापक है।

'मैं-मेरे' के संस्कार अन्तःकरण में पड़े हैं। अन्तःकरण जहाँ जाता है वहाँ चिदाकाश की सत्ता लेकर अपने संस्कारों के अनुसार चेष्टा करता है। बिलोरी काच जहाँ होता है वहाँ अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य का प्रकाश केन्द्रित करता है।

चिदाकाश परब्रह्म परमात्मस्वरूप हमारा वास्तविक स्वरूप है। उसमें अन्तःकरण जहाँ जाकर जैसा सोचता है वैसा उसे प्रतीत होता है। वृत्ति जब नींद में चली जाती है तब कुछ नहीं। यह 'कुछ नहीं' की अवस्था को भी चिदाकाश जानता है।

'रात को गहरी नींद आ गई। कुछ नहीं देखा....।'

'कुछ नहीं देखा....।' उसको भी चिदाकाश देखता है। भूताकाश और चित्ताकाश को जो देख रहा है वह चिदाकाश है। इस चिदाकाश को जो 'मैं' रूप में जान लेता है वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रूद्र, शिव, सब कुछ हो जाता है। जीवपने की भ्रांति उसकी मिट जाती है।

तुम अगर वास्तव में चिदाकाशस्वरूप नहीं होते तो यहाँ बैठे-बैठे सूर्य को नहीं देख सकते। तुम जहाँ न हो वहाँ का तुम्हें ज्ञान नहीं हो सकता। तुम्हारी इन्द्रियाँ सीमित हैं। सूर्य तक ही पहुँच सकती हैं। उससे भी पार चिदाकाश तुम्हारा स्वरूप है। इन्द्रियों से जो दिखेगा वह सीमित होगा। इन्द्रियाँ भी वहीं देख सकेगी जहाँ तुम हो। जहाँ तुम नहीं हो वहाँ इन्द्रियाँ नहीं देख सकेगी। सूर्य में भी तुम हो इसलिए सूर्य दिखता है। चन्द्र में भी तुम हो इसलिए वह दिखता है। लेकिन तुम जब देह को 'मैं' मान लेते हो तब धोखा खा जाते हो। वास्तव में तुम चिदाकाशस्वरूप होकर सबमें व्याप रहे हो। चित्ताकाश भूताकाश को व्याप रहा है। चिदाकाश ब्रह्म सबको व्याप रहा है। सब उसी में है। पापी-पुण्यात्मा, दुर्जन-सज्जन, अपना-पराया, आँधी-तुफान, बरसात, सर्दी-गरमी सब आकाश के भीतर हैं। ये सब होते हुए भी आकाश का कुछ बना नहीं सकते और कुछ बिगाड़ नहीं सकते, कुछ बढ़ा नहीं सकते और कुछ घटा नहीं सकते। कितनी भी आँधी चले, कितनी भी बारिश हो, कितने भी झगड़े हों, आकाश का कुछ बिगड़ता नहीं।

तुलसीदास जी ठीक कहा हैः

चिदानन्द देह तुम्हारी।
विगत विकार कोई जाने अधिकारी।।

जैसे देह दृष्टि से देखा जाये तो आकाश तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता, तुम आकाश का त्याग नहीं कर सकते ऐसे ही सच्चिदानंद परमात्मा तुम्हारा त्याग नहीं कर सकता और तुम परमात्मा का त्याग नहीं कर सकते।

तुमने रूपयों का संग्रह किया और त्याग भी दिया तभी भी आकाश का तुमने संग्रह भी नहीं किया। तुमने कर्मकाण्ड किया, उपासना की तब भी आकाश वैसे का वैसा।

ऐसे ही वह चिदाकाशस्वरूप परब्रह्म परमात्मा के रूप में तुम वैसे के वैसे ही हो। उसको न जानने से सारे अनर्थ हैं। उसको जान लिया तो तुम्हारा बाल बाँका नहीं हो सकता, कोई कर नहीं सकता। देह को कोई रख नहीं सकता और तुम्हारा कोई नाश नहीं कर सकता। तुम अपने आपको छोड़ नहीं सकते और देह को रख नहीं सकते। घड़े को कोई सदा रख नहीं सकता और घड़े में आये हुए आकाश का कोई नाश नहीं कर सकता।

देह है घड़ा। तुम हो आकाशस्वरूप। तुम हो सागर। देह है उसमें बुलबुला। तुम हो सोना। देह है आकृति। तुम हो मि ी तो देह है खिलौना। तुम हो धागा और देह है उसमें पिरोया हुआ मणि। इसीलिए गीता में कहा हैः

सूत्रे मणिगणा इव।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैं जगत में व्याप्त हूँ। कैसे ? जैसे पिरोये हुए मणियों में धागा व्याप्त है ऐसे।

जैसे श्रीकृष्ण जगत में व्याप्त है ऐसे ही तुम भी जगत में व्याप्त हो। श्रीकृष्ण की आकृति देखोगे तो वह जगत में व्याप्त नहीं दिखेगी। श्रीकृष्ण वह अपनी मायाविशिष्ट आकृति को 'मैं' नहीं मानते। श्रीकृष्ण उनके वास्तविक 'मैं' को 'मैं' जानते हैं। हम लोग नहीं जानते इसलिए धोखे में रह जाते हैं।

श्रीकृष्ण का जो वास्तविक तत्त्व है वही नाली के कीड़े का भी वास्तविक तत्त्व है, लेकिन वह अभागा नहीं जानता है। इसलिए दुःख भाग रहा है। उसको उसी नाली में अच्छा लग रहा है। द्वारिका नगरी डूब रही थी तो श्रीकृष्ण ने हँसते-हँसते उसे डूब जाने दिया। दिल में कोई गम नहीं। वे जानते हैं कि अपने चिदाकाशस्वरूप में तो कोई घाटा नहीं है। हजार घड़े फूट जायें, आकाश को कोई घाटा पड़ा ? लाख घड़े बन जाएँ, आकाश को कोई लाभ हुआ ? नहीं।

सब आकृतियाँ हमारी माया है। जो दिखे वह सब माया है। चाहे किसी का भी देह हो, वह माया है। जिसमें माया दिखती है वह चिदाकाश परमात्मा।

माया भी परमात्मा को छोड़कर नहीं रह सकती। जैसे घड़ा आकाश को छोड़कर नहीं रह सकता, ऐसे ही दिखने वाले शरीर भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म चिदाकाश को छोड़कर नहीं रह सकते।

आदरपूर्वक सुनते-सुनते ब्रह्मज्ञान अगर समझ में आ जाये तो हजारों हजारों लाखों जन्मों की मजदूरी बच जाती है। अन्यथा तो अपने-अपने मन की कल्पना के अनुसार आदमी प्राप्ति करता है और धोखे में पड़ता है। मन की मान्यताएँ बदलती जाती हैं। जैसी मान्यताएँ होती हैं मन ऐसे घाट घड़ता जाता है। चिदाकाश में ऐसे ऐसे रूप प्रतीत होते जाते हैं। जैसे बादलों में हाथी-घोड़ा आदि दिखते हैं, मरूभूमि में पानी दिखता है ऐसे ही चिदाकाश में अज्ञानियों ने जगत की कल्पना कर ली है। जगत वास्तव में कुछ है नहीं। कल्पना में जगत ऐसा पक्का मान लिया है कि वही दिखता है, ब्रह्म

नहीं दिखता।

बालक को आकाश के बादल में रथ दिखता है। रथ जब दिखता है तब बादल नहीं दिखता। वास्तव में बादल दिखता है तभी रथ दिखता है। जिसको रथ–बुद्धि पक्की हो गई है उस बालक को रथ ही दिखेगा, बादल नहीं दिखेगा।

"यह क्या है ?"

"बाबाजी ! कटोरी है।"

कटोरी है लेकिन पहले पीतल है तभी कटोरी दिखती है। ऐसे ही पहले ब्रह्म है, बाद में जगत दिखता है। कटोरी टूटेगी, फूटेगी, बदलेगी लेकिन पीतल वही का वही। गहना टूटेगा, फूटेगा, बदलेगा लेकिन सोना वही का वही। ऐसे ही जगत और शरीर टूटते हैं फूटते हैं, बदलते हैं लेकिन अपना आपा चिदाकाश वही का वही। अपना मूलस्वरूप जाना तो वही का वही। अपनी प्रकृति में उलझे, माया में उलझे तो कितने ही दुःख भोगो, कितने ही जन्म लो।

परमात्मा के तंत्र में ऐसी विशेषता है कि जो सत्पात्र हैं, सदाचारी होते हैं, सेवा से अन्तःकरण पवित्र करते हैं, गुरूमुख होते हैं ऐसे उत्तम शिष्यो के लिए ही यह ज्ञान अनामत रहता है। अनधिकारी चाहे शब्द सुन ले लेकिन उसके हृदय में यह ज्ञान पचता नहीं, रहस्य खुलता नहीं। यह ज्ञान ऋषियों के हृदय में उड़ेला जाता है, सत्पात्र साधकों के हृदय में उड़ेला जाता है।

उसी चिदाकाशस्वरूप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, लोक लोकान्तर पैदा हो होकर लीन हो जाते हैं। जैसे तुम्हारे अमदावाद में कई मकान, कल–कारखाने, फैक्ट्रीयाँ, मिलें कई लोग हैं, कितने ही लोग पैदा हो–होकर चले गये होंगे लेकिन यहाँ के आकाश में कुछ नहीं।

ऐसे ही यह पूरा भूताकाश ब्रह्म की एक छोटी–मोटी फैक्ट्री है। मानो, एक छोटा सा तम्बू ताना हुआ है। सर्कसवालों का तम्बू कितना विशाल होता है ! लेकिन पृथ्वी की विशालता के आगे सर्कस के तम्बू का क्या हिसाब ? ऐसे ही चिदाकाश परब्रह्म परमात्मा के आगे भूताकाश भी कुछ नहीं है।

सर्कस के तम्बू में कितने सारे लोग होते हैं ? कितने ही हाथी, घोड़े, सिंह, बन्दर, जोकर, सर्कस दिखाने वाले, खेल देखने वाले सब तम्बू के भीतर आ जाते हैं। लेकिन आकाश के आगे तम्बू क्या है ? फिर भी आकाश में तम्बू है, तम्बू में आकाश है। तम्बू में जो लोग बैठे हैं उनके हृदय में भी आकाश है। आकाश के बाहर तम्बू नहीं है। आकाश के बाहर तम्बू में बैठे हुए लोग भी नहीं है। सब आकाश रूप हुआ कि नहीं ? सब आकाश रूप है। ऐसे ही सब परब्रह्म रूप है। परब्रह्म में स्थित होना है।

परब्रह्म में सब स्थित तो हैं ही, परब्रह्म से बाहर तो हैं नहीं लेकिन नहीं जानते हैं न ! देह और इन्द्रियों के साथ जुड़ गये हैं। इसलिए भगवान में स्थिति होते हुए भी उस स्थिति का लाभ नहीं होता। पानी में बुदबुदा उठा। बुदबुदे की पानी में स्थिति है ही लेकिन बुदबुदा अपने को पानी नहीं जानता, अपने को ही बुदबुदा मानता है। पानी तरंगायित होता है तो बुदबुदा खतरे में आ जाता है। खतरा क्यों है ? अपने को बुदबुदा मानता है। अपने को पानी जान ले तो उसकी पानी में स्थिति है कि नहीं ? है.....।

ऐसे ही सबकी ब्रह्म में स्थिति है। जैसे बुदबुदा पानी में ही है, पानी रूप ही है ऐसे ही सब जीव ब्रह्म में हैं, ब्रह्म रूप है।

कुंभ में जल जल में कुंभ बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जले समाना यह अचरज है ज्ञानी॥

कुंभ फूटा तो जल जल में समा गया। कुंभ फूटा नहीं है तभी भी जल जल ही में है।

सरोवर में घड़ा डाल दिया। घड़ा सरोवर के जल से भर गया। घड़े के बाहर और भीतर पानी ही पानी है। घड़े ने सरोवर का पानी और घड़े का पानी अलग दिखा दिया। घड़ा फूटा तो घड़े में आया हुआ सरोवर का पानी सरोवर में मिल गया। घड़ा नहीं फूटा है तो क्या नहीं मिला है ? अभी भी मिला हुआ है। ऐसे ही देहभावरूपी घड़ा आत्मज्ञानरूपी डंडे से फूटा तो जीव ब्रह्म की एकता हो गई।
ऐसे ही देह गिरने के बाद ज्ञानी ब्रह्म में मिलेगा ऐसी बात नहीं है। मरने के बाद ज्ञानी ब्रह्म में लीन हो जाएगा...... तो अभी कहाँ है ? अभी भी उसी में हैं। जैसे आकाश में तुम हो और तुम में आकाश है ऐसे ही ब्रह्म में ही हैं मगर जानते नहीं। अपने को देह मान बैठते हैं और वे कहते हैं मुझे पैसा चाहिए, मुझे लड़का चाहिए, मुझे यह चाहिए, मुझे वह चाहिए।

पहले अपने को तो जान लो भैया ! फिर सारे रूपये तेरे ही हैं और करोड़ों-करोड़ों बेटे तेरे ही हैं।

धन किसलिए चाहता तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बने वो तू महा टंकशाल है॥
चाह न कर चिन्ता न कर चिन्ता भी बड़ी दुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ मगर चाह करके भ्रष्ट है॥

चैतन्यस्वरूप परमात्मा से चाह का फुरना हुआ। उस फुरने को मन भी कहते हैं माया भी कहते हैं, जीव भी कहते हैं।

फुरना वही है। देह में जीने की इच्छा की तो जीव नाम पड़ गया। संकल्प-विकल्प किया तो मन नाम पड़ गया। न होने में होने की भावना की तो माया नाम पड़ गया।
'माया बड़ी बलनान है......।'
माया कहाँ से बल लायी ?

सागर में बड़ी तरंग उठकर भाग रही है। बड़ी-बड़ी नौकाओं को डोलायमान कर रही है। उस तरंग में बल कहाँ से आया ? बिना पानी के उसमें बल हो सकता है क्या ? ऐसे ही माया दिख रही है बड़ी लेकिन ब्रह्म के बिना उसकी ताकत क्या है ?

बुलबुले की तरंग बड़ी दिखती है लेकिन बुलबुला अगर अपने को पानी समझे तो तरंग उसको क्या कर सकती है ?

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

असीम पुण्य की प्राप्ति

एक जीवन्मुक्त महात्मा को स्वप्न आया। स्वप्न में सब तीर्थ मिलकर चर्चा कर रहे थे कि कुंभ के मेले में किसको अधिक से अधिक पुण्य मिला होगा। प्रयागराज ने कहा किः "अधिक से अधिक पुण्य तो उस रामू मोची को मिला है।"

गंगाजी ने कहाः "रामू मोची तो मुझमें स्नान करने नहीं आया था।"

देव प्रयाग ने कहाः "मुझमें भी नहीं आया था।"

रूद्र प्रयाग ने कहाः "मुझमें भी नहीं।"

प्रयागराज ने फिर कहाः "कुंभ के मेले में कुंभ स्नान का अधिक से अधिक पुण्य यदि किसी को मिला है तो राम मोची को मिला है।"

सब तीर्थों ने एक स्वर से पूछाः

"यह रामू मोची कहाँ रहता है और क्या करता है ?"

प्रयागराज ने कहाः "रामू मोची जूता सीता है और केरल प्रदेश में दीवा गाँव में रहता है।"

महात्मा नींद से जाग उठे। सोचने लगे कि यह भ्रांति है या सत्य है ! प्रभातकालीन स्वप्न प्रायः सच्चे पड़ते हैं। इसकी खोजबीन करनी चाहिए।

संत पुरूष निश्चय के पक्के होते हैं। चल पड़े केरल प्रदेश की ओर। घूमते-घामते पूछते-पूछते स्वप्न में निर्दिष्ट दीवा गाँव में पहुँच गये। तालाश की तो सचमुच रामू मोची मिल गया। स्वप्न की बात सच निकली।

जीवन्मुक्त महापुरूष रामू मोची से मिले। रामू मोची भावविभोर हो गयाः "महाराज ! आप मेरे द्वार पर ? मैं तो जाति से चमार हूँ। चमड़े का धन्धा करता हूँ। वर्ण से शूद्र हूँ। उम्र में लाचार हूँ। विद्या से अनपढ़ हूँ और आप मेरे यहाँ ?"

"हाँ....." महात्मा बोले। "मैं तुमसे यह पूछने आया हूँ कि तुम कुंभ में गंगा स्नान करने गये थे ? इतना सारा पुण्य तुमने कमाया है ?"

रामू बोलता हैः "नहीं बाबा जी ! कुंभ के मेले में जाने की बहुत इच्छा थी इसलिए हररोज टका-टका करके बचत करता था। (एक टका माने आज के तीन पैसे।) इस प्रकार महीने में करीब एक रूपया इक ा होता था। बारह महीने के बारह रूपये हो गये। मुझे कुंभ के मेले में गंगा स्नान करने अवश्य जाना ही था, लेकिन हुआ ऐसा कि मेरी पत्नी माँ बनने वाली थी। कुछ समय पहले की बात है। एक दिन उसे पड़ोसे के घर से मेथी की सब्जी की सुगन्ध आयी। उसे वह सब्जी खाने की इच्छा हुई। शास्त्रों में सुना था कि गर्भवती स्त्री की इच्छा पूरी करनी चाहिए। अपने घर में वह गुंजाइश नहीं थी तो मैं पड़ोसी के घर सब्जी लेने गया। उनसे कहाः

"बहन जी ! थोड़ी-से सब्जी देने की कृपा करें। मेरी पत्नी को दिन रहे हैं। उसे सब्जी खाने की इच्छा हो आई है तो आप.....।"

"हाँ भैया ! हमने सब्जी तो बनाई है...." वह माई हिचकिचाने लगी। आखिर कह ही दियाः ".....यह सब्जी आपको देने जैसी नहीं है।"

"क्यों माता जी ?"

"हम लोगों ने तीन दिन से कुछ खाया नहीं था। भोजन की व्यवस्था नहीं हो पाई। आपके भैया काफी परेशान थे। कोई उपाय नहीं था। घूमते-घामते स्मशान की ओर वे गये थे। वहाँ किसी ने

अपने पितरों के निमित्त ये पदार्थ रख दिये थे। आपके भाई वह छिप–छिपाकर यहाँ लाये। आपको ऐसा अशुद्ध भोजन कैसे दें ?"

यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि अरे ! मैं ही गरीब नहीं हूँ। अच्छे कपड़ों में दिखने वाले लोग अपनी मुसीबत कह भी नहीं सकते, किसी से माँग भी नहीं सकते और तीन–तीन दिन तक भूखे रह लेते हैं ! मेरे पड़ोस में ऐसे लोग हैं और मैं टका–टका बचाकर गंगा स्नान करने जाता हूँ ? मेरा गंगा–स्ना तो यहीं है। मैंने जो बारह रूपये इक`` किये थे वे निकाल लाया। सीधा सामान लेकर उनके घर छोड़ आया। मेरा हृदय बड़ा सन्तुष्ट हुआ। रात्रि को मुझे स्वप्न आया और सब तीर्थ मुझसे कहने लगेः "बेटा ! तूने सब तीर्थों में स्नान कर लिया। तेरा पुण्य असीम है।"

"बाबाजी ! तबसे मेरे हृदय में शान्ति और आनन्द हिलोरें ले रहे हैं।"

बाबाजी बोलेः "मैंने भी स्वप्न देखा था और उसमें सब तीर्थ मिलकर तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे।"

वैष्णव जन तो तेने रे कहीए जे पीड़ पराई जाणे रे।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे।।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सत्संग लहरियाँ

जो लोग भीष्ण संग्राम करके, क्रूर नरसंहार करके, बड़े–बड़े युद्ध खेलकर सत्ता की गद्दी पर पहुँच जाते हैं उनका नाम सुनकर उनको याद करके लोग आदर से नतमस्तक नहीं होते लेकिन विश्व में कुछ ऐसे आत्म–विजेता लोग हो जाते हैं, नतमस्तक हो जाते हैं। भीष्म, हरिश्चन्द्र, भरत, शंकराचार्य, महावीर, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य, मीराबाई, एकनाथजी, शिवाजी महाराज, तोतापुरी, रामकृष्ण आदि ऐसी विभूतियाँ हैं। जिन्होंने अपने मन को, अपनी इन्द्रियों को संयत किया है, जिन्होंने अपने को विकारी सुखों से बचाकर निर्विकारी नारायण सुख का प्रसाद पाया है ऐसे लोग चाहे इस देश के हों चाहे परदेश के हों, उनको समाज ने खूब आदर–मान से याद रखा है। लोगों ने सुकरात को याद रखा है, महात्मा थोरो को लोग याद करते हैं जिसस को लोग याद करते हैं, धन्ना जाट को लोग याद करते हैं, वल्लभाचार्य, रामानुजाचार्य एवं अन्य कई महापुरूषों को, आत्मा–परमात्मा में विश्रान्ति पाये हुए संतों को हम बड़े आदर से याद करते हैं। शबरी भिलनी हो चाहे रोहिदास चमार हो, गार्गी हो चाहे राजा जनक हों, एकनाथजी हों या एकलव्य हो, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश करके मन को परमात्मा में लगाया है या लगाने का दृढ़ प्रयत्न किया है ऐसे लोग जन्म लेकर मर नहीं जाते लेकिन जन्म लेकर अमर आत्मा की ओर चल देते हैं, संसार में अपनी मधुरता, अपनी शुभ कीर्ति छोड़ जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण भगवद् गीता में अर्जुन से कहते हैं–

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

'इन्द्रिय समुदाय को सम्यक प्रकार से नियमित करके सर्वत्र समभाववाले, भूत मात्र के हित में रत वे भक्त मुझ ही को प्राप्त होते हैं।'

(भगवद् गीताः १२.४)

मनुष्य को विकारी आकर्षण ने तुच्छ बना दिया है। जिनके जीवन में संयम है, नियम है ऐसे इन्द्रियों को संयत करने वाले लोग, सब भूतों के हित में रमने वाले लोग, समभाव से मति को सम रखने वाले वे लोग मतिदाता के उच्च अनुभव में स्थिति पा लेते हैं। ऐसे लोग भगवान को प्राप्त कर लें इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। यह कोई जरूरी नहीं है कि वह आदमी अच्छा पढ़ा–लिखा होना चाहिए या अनपढ़ होना चाहिए, बहुत धनवान होना चाहिए या निर्धन होना चाहिए, बच्चा होना चाहिए या जवान होना चाहिए या बूढ़ा होना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है।

किसी आदमी को परदेश जाना हो तो उसका यहाँ कुछ एकाउन्ट होना चाहिए, टिकट के पैसे होना चाहिए, यह होना चाहिए, वह होना चाहिए, फिर आदमी परदेश जा सकता है। छः बारह महीने में उसे वहाँ से निकाल दिया जाता है अथवा सिफारिश लगाकर वहाँ का नागरिक बनता है। लेकिन जिसने अपने इन्द्रियग्राम को जीता है उसको न कोई देश छोड़ना है न किसी की गुलामी करनी है। वह तो सर्वत्र समबुद्धयः हो जाता है। उसकी सर्वत्र सदा समबुद्धि हो जाती है। उसके लिए अपने और पराये का भेद क्षीण होने लगता है। उसके लिए इहलोक और परलोक की सत्यता मिटने लगती है। उसके लिए राग और द्वेष मन की कल्पना एवं विकारों का आवेश मात्र लगता है। वह भूतमात्र के हित में लगा हुआ पुरूष परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

भगवद् सुख में अगर बड़े में बड़ी रूकावट हो तो वह इन्द्रियों के सुख का आकर्षण। जो

संयमी पुरूष है वह इन्द्रियों के सुख के आकर्षण से अपने को संयत करता है। जीवन में अगर संयम नहीं होगा तो जीवन न जाने कौन सी गर्त में जा गिरेगा। वृक्ष अगर कहे कि मुझे संयम की क्या जरूरत है ? मैं धरती से क्यों बँधा रहूँ ? वह स्वतन्त्र होकर इधर–उधर कूदता फिरे तो उसके फूल और फल नष्ट हो जाएँगे, पत्ते सूखकर गिर जाएँगे। वह स्वयं खत्म हो जाएगा। फिर वृक्ष की कोई कीमत नहीं रहेगी। वृक्ष अगर धरती के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, संयम नहीं है, उसके मूल हिलते–डुलते हैं तो उस वृक्ष की कोई कीमत नहीं है।

ऐसे ही परब्रह्म परमात्मा हमारी धरती है, मनरूपी मूल है, इन्द्रियाँरूपी टहनियाँ हैं। इन्द्रियाँरूपी टहनियाँ शायद थोड़ी–बहुत हिलती–डुलती रहें लेकिन मनरूपी मूल अगर अपने मूल कारण से जुड़ा रहे तो मन के प्रभाव से हमारे जीवनरूपी वृक्ष में भक्तिरूपी सुरभि आयेगी, आत्मानंदरूपी फूल खिलेंगे, आत्मशांति एवं मुक्तिरूपी फल लगेंगे।

मनरूपी मूल परब्रह्म परमात्मारूपी धरती से हटकर उछल–कूद करे तो जीवन विषाद से सूखा रहेगा। फिर मन संसारी विकारी सुखों में भटका–भटकाकर नष्ट करता जाएगा।

जिसने इन्द्रियरूपी ग्राम को जीता है, थोड़ा संयम किया है वह भगवान को प्राप्त करता है। वह सर्व भूतों के हित में रत रहता है। उसकी बुद्धि समत्व योग में प्रतिष्ठित हो जाती है।

वीणा की तार कहे कि हम वीणा से क्यों बँधे रहें, हमें संयम की क्या जरूरत है ? तो वे तार धरती पर पड़े रहेंगे। उनसे कोई मधुर स्वर नहीं निकलेंगे, परमात्मा की मधुर प्रार्थना नहीं पनपेगी।

अगर नदी कहे कि मैं दो किनारों के बीच ही क्यों चलूँ, बन्धन में क्यों रहूँ ? तो नदी स्वतंत्र होकर सागर तक नहीं भी पहुँच सके। वह रास्ते में ही बिखर जाएगी। दो किनारों के बीच संयमित होकर नदी बहती है तो वह गाँवों को हरियाली से लहलहाती हुई आखिर में सागर तक पहुँच जाती है।

ऐसे ही मनुष्य जीवन में संयम के किनारे हों तो जीवन–सरिता की यात्रा सागररूपी परमात्मा में परिसमाप्त हो सकती है। वाष्प अगर संयमित नहीं है तो वह आकाश में बिखर जाती है, उसकी कोई कीमत नहीं रहती। वह अगर रेलगाड़ी के बोयलर में संयत होती है तो वह हजारों टन माल–सामान लेकर भाग सकती है।

ऐसे ही अपनी वृत्ति अगर संयत होगी तो हजारों विघ्न–बाधाओं के बीच भी हम अपनी मंजिल तय कर सकते हैं और दूसरों को भी तय कराने में सहभागी हो सकते हैं।

अपने इन्द्रियग्राम को संयत करने के दो चार प्रयोग जान लो और हररोज थोड़ा–थोड़ा अभ्यास करो।

आदमी कितना भी छोटा हो, कितना भी गरीब हो, कितना भी असहाय हो, अगर उसे सत्संग मिल जाय तो वह महान् बन जाएगा। देवर्षि नारद पूर्व जीवन मे कितने छोटे थे ! केवल दासीपुत्र..... ! जाति छोटी, छपड़ा छोटा, माँ ऐसी साधारण दासी कि चाहे कहीं उसको काम में लगा लें। ऐसे दासीपुत्र महान् देवर्षि नारद हो गये। उनके जीवन के तीन तार थेः श्रद्धा, सत्संग और तत्परता।
सत्संग से वह चीज मिलती है जो धन से, सत्ता से या स्वर्ग से भी नहीं मिलती है।

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की हरे कोटि अपराध॥

करोड़ों अपराध सत्संग से नष्ट हो जाते हैं।
सत्संग हमें तीन बातें सिखाता हैः निरीक्षण, शिक्षण और नियँत्रण।

निरीक्षणः

सत्संग हमें यह सिखाता है कि हमें आत्म निरीक्षण करना चाहिए। हमने क्या–क्या गलतियाँ हैं, किस कारण से गलती होती है यह जाँचो। न देखने जैसी जगह पर हम बार–बार देखते तो नहीं हैं ? काम विकार से हमारी शक्ति नष्ट तो नहीं होती है ? बीड़ी से, शराब से, कबाब से या किसी की हल्की संगत से हमारे संस्कार हल्के तो नहीं हो रहे हैं ? हल्के विचारों से हमारा पतन तो नहीं हो रहा है ? आत्म निरीक्षण करो।

शत्रु कुछ निन्दा करता है तो कैसे ध्यान से लोग सुनते हैं ? लोभी धन का कैसा निरीक्षण करता है ? ड्राइवर रास्ते का कैसा निरीक्षण करता है ? चाहे स्कूटर ड्राइवर हो चाहे कार ड्राइवर हो, वह सावधानी से सड़क को देखता रहता है। कहीं खड़ा होता है तो स्टीयरिंग घूम जाती है, कहीं बम्प होता है तो ब्रेक लग जाती है, कहीं चढ़ाई होती है तो रेस बढ़ जाती है, ढलान होती है तो रेस कम हो जाती है। हर सेकेंड ड्राइवर निर्णय लेता रहता है और गन्तव्य स्थान पर गाड़ी सुरक्षित पहुँचा देता है। अगर वह सावधान न रहे तो कहीं टकरा जायगा, खड्डे में गिर जाएगा, जान खतरे में पड़ जाएगी। ऐसे ही अपने हृदय की वृत्तियों का निरीक्षण करो। खोजो कि किन कारणों से हमारा पतन होता है ? दिनभर के क्रिया कलापों का निरीक्षण करो, कारण खोज लो और सुबह में पाँच–दस प्राणायाण करके ॐ की गदा मारकर उन हल्के पतन के कारणों को भगा दो।

झूठ बोलने से हृदय कमजोर होता है।

जीवन में उत्साह होना चाहिए। उत्साह के साथ सदाचार होना चाहिए। उत्साह के साथ पवित्र विचार होने चाहिए। उत्साह के साथ ऊँचा लक्ष्य होना चाहिए। दुःशासन, दुर्योधन और रावण में उत्साह तो था लेकिन उनका उत्साह शुद्ध रास्ते पर नहीं था। उनमें दुर्वासनाएँ भरी पड़ी थी। दुर्योधन ने दुष्टता करके कुल का नाश करवाया। रावण में सीताजी के प्रति दुर्वासना थी। राजपाट सहित अपना और राक्षस कुल का सत्यानाश किया। दुःशासन ने भी अपना सत्यानाश किया।

उत्साह तो उन लोगों में था, चपलता थी, कुशलता थी। कुशलता होना अच्छा है, जरूरी है। उत्साह होना अच्छा है, जरूरी है। चपलता तत्परता होना अच्छा है, जरूरी है लेकिन तत्परता कौन–से कार्य में हैं ? ईश्वरीय दैवी कार्य में तत्परता है कि झूठ कपट करके बंगले पर बंगला बनाकर विलासी होने में तत्परता है ? बड़ा पद पाकर लोगों का शोषण करने की तत्परता है कि लोगों के हृदय में छुपे हुए लोकेश्वर को जगाकर भगवान के मार्ग में सहायरूप होने की, मुक्त होने की अथवा मुक्ति के मार्ग में जाने वालों की सेवा, सहयोग में तत्परता है ? यह देखना पड़ेगा।

अपने को बचाने में तत्परता है कि अपने को सुधारने में तत्परता है ? अपना बचाव पेश करने में तत्परता है कि दोष खोजने में तत्परता है ? अपने को निर्दोष साबित करने में तत्परता है कि वास्तव में निर्दोष होने में तत्परता है ? अपने को आलसी, प्रमादी बनाने में बुद्धि लग रही है कि अपने को उत्साही और सदाचारी बनाने में लग रही हैं ?

अपना साखी आप है निज मन माँही विचार।
नारायण जो खोट है वाँ को तुरन्त निकाल।।

रोज सुबह ऐसी खोट को निकालते जाओ..... निकालते जाओ.....। चन्द दिनों में तुम्हारा जीवन विलक्षण लक्षणों से सम्पन्न होगा। तुममें दैवी गुण विकसित होने लगेंगे।

युद्ध के मैदान में श्रीकृष्ण ने अपने प्यारे अर्जुन से कहाः निर्भय रहना।

राक्षस निर्भय रहते हैं तो दुराचार करते हैं। सज्जन निर्भय रहते हैं तो सदाचार करते हैं। भगवान ने केवल निर्भय होने को नहीं कहा। अभयं सत्त्वसंशुद्धिः। निर्भयता कैसी ? सात्त्विक निर्भयता। आत्मज्ञान में व्यवस्थित हो। अपने पास विद्या है तो विद्या का दान दो। धन है तो दूसरों के हित में

लगाओ। भगवान को पाने वालों के लिए, भक्ति ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए खर्चो। शरीर से कभी व्रत करो, कभी सेवा करो, कभी उपवास रखो। स्वाध्याय करो। आत्मज्ञान के शास्त्रों का अध्ययन करो, विचार करो। जैसे शरीर को रोटी, पानी और स्नान की आवश्यकता है ऐसे ही तुम्हारे अन्तःकरण को सत्संग, जप और ध्यान की आवश्यकता है।

स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। हररोज सत्शास्त्रों का सेवन अवश्य करना चाहिए।

हररोज निरीक्षण करो कि हमसे क्या-क्या अच्छे काम होते हैं और उसमें क्या-क्या कमी है। अच्छा कितना हुआ यह भूल जाओ और कमी क्या रह गई यह खोज लो। बढ़िया कार्य हुआ यह ठीक है, इससे भी बढ़िया हो सकता है कि नहीं यह सोचो। अपनी योग्यता को विकसित करो। तुमने कितने जप किये यह याद करके फूलना नहीं। इससे भी अधिक जप कर सकते हो कि नहीं इस पर ध्यान दो।

शिक्षणः

अपने मन को, अपने चित्त को शिक्षण दोः 'कल तूने यह गलत काम किया है, न देखने जैसा देखा है, न करने जैसा किया है। बोल, अब तुझे क्या सजा दूँ ?' आदि आदि.....। मन को कभी पुचकारो तो कभी डाँटो। कभी एक युक्ति से तो कभी दूसरी युक्ति से उसको उन्नत करो। सत्शास्त्र और सत्पुरूषों का संग लेकर मन को प्रतिदिन आत्मज्ञान का शिक्षण दो, मुक्ति के मार्ग का शिक्षण दो।

नियंत्रणः

संयम सदाचार से मन को नियंत्रित करो।

इस प्रकार निरीक्षण, शिक्षण और नियंत्रण से अपना सर्वांगी विकास करो। हिम्मत करो। अवश्य सफलता मिलती है।

योग में धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास आवश्यक है और तत्त्वज्ञान में श्रवण-मनन निदिध्यासन का अभ्यास आवश्यक है। योग में अभ्यास का प्राधान्य है और तत्त्वज्ञान में वैराग्य का प्राधान्य है। योग-सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए, योग के द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अभ्यास की आवश्यकता है। योग में वैराग्य चाहिए तो सही लेकिन इतना ज्यादा न हो तो भी काम चल जाए। योगाभ्यास करने से सिद्धियाँ मिलती हैं, ऐश्वर्य मिलता है। सिद्धियाँ और ऐश्वर्य की इच्छा है तभी तो मिलते हैं। जिसको कोई इच्छा नहीं है उसको सिद्धियों के मार्ग पर जाने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा साधक तो सीधा तत्त्वज्ञान का अनुभव करके निहाल हो जाता है, मेरा निजस्वरूप ही मुक्तिस्वरूप है यह जान लेता है। जिसके जीवन में वैराग्य नहीं है उसको तत्त्वज्ञान जल्दी से नहीं होता।

हमें अभ्यास की आवश्यकता है। पहले इन्द्रियों का संयम करके फिर मन को वश में करना चाहिए। अभ्यास और वैराग्य अंतरंग साधन हैं और इन्द्रिय संयम यह बहिरंग साधन है। बहिरंग साधन सफल होने पर अंतरंग साधन में सफलता मिलती है। नहीं देखने योग्य व्यर्थ की बातें सुनकर शक्ति का व्यय नहीं करना चाहिए। व्यर्थ प्रलाप करते रहने की आदत पड़ गई है तो हररोज दो घण्टे मौन रहकर शक्ति का संचय करना चाहिए। इस प्रकार इन्द्रिय संयम करके मन को वश में करने का अभ्यास करना चाहिए।

बाहर के विषय-विकार की आदत छूटती नहीं है तो कितना भी सत्संग सुनें, ज्ञान की चर्चा सुनें, थोड़ा-बहुत पुण्य होगा, हृदय पवित्र होगा, सुनते समय लगेगा कि हाँ, ठीक है लेकिन वापस जैसे थे वैसे ही हो जाते हैं। विषय विकार के विष से बच नहीं पाते। क्योंकि अभ्यास नहीं करते। गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।

परमं पुरूषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्॥

विश्वास जिसके बारे में केवल सुना है उसमें होता है और सेवा जिसको देखा है उसकी होती है। जिसके प्रति विश्वास होता है उसकी सेवा आसानी से होती है। भगवान को देखा नहीं, उनके वास्तविक स्वरूप को देखा नहीं इसलिए उनमें विश्वास करना पड़ता है। भगवान के बाह्य स्वरूप को देखा है इसलिए उसकी सेवा होती है।

विश्वास करने योग्य केवल वही वस्तु होती है जिसके बारे में केवल सुना है।

करने योग्य है प्राप्त परिस्थितियों का सदुपयोग और चाहने योग्य केवल अपनी 'मैं' है।

विश्वास सुने हुए मैं करना है, उपयोग प्राप्त वस्तु का करना है और जानना अपने आपको है।

अपने को जानना है। प्राप्त परिस्थितियों का सदुपयोग करना है। सुने हुए में विश्वास करना है।

सब मनुष्य, सब देशवासी, सब जातिवादी, सब धर्मवादी एक बात कर सकते हैं। वे जिस धर्म को, जिस भगवान को मानते हैं उसमें विश्वास करें तो उनकी उन्नति हुए बिना नहीं रहेगी। तुम जिसको भी मानते हो, ईश्वर को, ऋब्छ को गुरू को, चाहे ठाकुरजी की मूर्ति को मानते हो चाहे पीपल के पेड़ को मानते हो चाहे तुलसी के पौधे को मानते हो, धातु की मूर्ति को मानते हो चाहे पत्थर की मूर्ति को मानते हो, चाहे शालिग्राम को मानते हो चाहे मि ी के बने हुए महादेव जी को मानते हो, तुम अपना विश्वास दृढ़ करो। जड़ चेतन में वास्तविक तत्त्व तो वही है।

वास्तविक रूप से भगवान सर्वत्र हैं, अणु-अणु में हैं। जहाँ तुम्हारा विश्वास होगा वहाँ से फल आयेगा। विश्वास के बल से तुम्हारी इन्द्रियाँ और मन संयत रहेंगे। तुम्हारा आत्मबल विकसित होगा। विश्वास से तुममे धैर्य आयेगा। विश्वास से तुममें उत्साह होगा। विश्वास से तुम्हारा अन्तःकरण बाह्य आकर्षणों से थोड़ा बचेगा। प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग होगा।

प्राप्त वस्तुएँ अनेक होती हैं। उनका परिणाम होता है सुख या दुःख। सब अनुकूल वस्तु और परिस्थितियों से सुख होता है और प्रतिकूल वस्तु और परिस्थितियों से दुःख होता है।

दुःख न हो, प्रतिकूल परिस्थितियाँ न आयें यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं है। अनुकूल परिस्थितियाँ बनी रहें यह तुम्हारे हाथ की बात नहीं है। अनुकूल परिस्थिति में आकर्षित न होना, अनुकूल परिस्थिति में सुख का भ्रम करके उसके दलदल में न गिरना यह तुम्हारे हाथ की बात है। प्रतिकूल परिस्थितियों से भयभीत न होना यह तुम्हारे हाथ की बात है। अनुकूल परिस्थितियों के सुख में लालसा नहीं और प्रतिकूल परिस्थितियों के दुःख का भय नहीं तो चित्त साम्य अवस्था में पहुँच जाएगा, शांत अवस्था में पहुँच जाएगा, निःसंकल्प अवस्था में पहुँच जाएगा। इससे नित्य नूतन रस, नवीन ज्ञान, नवीन प्रेम, नवीन आनन्द और वास्तिवक जीवन का प्राकव्य ह जाएगा।

हम क्या करते हैं ? प्राप्त वस्तु और परिस्थितियों का दुरूपयोग करते हैं। सुख आता है तो इन्द्रियाँ और विकारों के सहारे सुख का भोग करके अपनी शक्ति क्षीण करते हैं। दुःख आता है तो भयभीत होकर चित्त को डोलायमान करते हैं। दुःख के भय से भी हमारी शक्तियाँ क्षीण होती हैं और सुख के आकर्षण से भी हमारी शक्तियाँ क्षीण होती हैं।

सुख में हम जितने अधिक आकर्षित होते हैं उतने भीतर से खोखले जो जाते हैं।

तुमने देखा होगा कि जो अधिक धनाढ्य है, जिसको सत्संग नहीं है, सदगुरू नहीं है वह आदमी भीतर से कमजोर होता है। भोगी आदमी, भयभीत आदमी भीतर से खोखला होता है।

जो महापुरूष सुख-दुःख में सम रहते हैं उनकी उत्तम साधना हो जाती है। यह साधना सुबह-शाम तो प्राणायाम, ध्यान आदि के साथ तो की जा सकती है, इतना ही नहीं दिनभर भी की जा सकती है।

सुख–दुःख में सम रहने का अभ्यास तो चलते फिरते हो सकता है। विपरीत परिस्थितियाँ आये बिना नहीं रहेगी। अनुकूलता भी आये बिना नहीं रहेगी। तुम प्राप्त वस्तुओं का सदुपयोग करने की कला सीख लो। मुक्ति का अनुभव सहज में होने लगेगा।

तुम्हारे पास कितने ही रूपये आये और चले गये। तुम रूपयों से बँधे नहीं हो। कई जन्मों में कितने ही बेटे आये और चले गये। तुम बेटों से बँधे नहीं हो। हम किसी वस्तु से, व्यक्ति से, परिस्थिति से बँधे हैं यह मानना भ्रम है। सुखद परिस्थितियों में ल ् हो जाने की मन की आदत है। मन के साथ हम जुड़ जाते हैं। मन में होता है कि यह मिले.... वह मिले....। मन के इस आकर्षण से हमारा अन्तःकरण मलिन हो जाता है। भय की बात का हम चिन्तन करते हैं। इससे हमारी योग्यता क्षीण हो जाती है।

रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि जब तक जियें तब तक साधना करनी है, क्योंकि जब तक जियेंगे तब तक परिस्थितियाँ आयेंगी। मरते दम तक परिस्थितियाँ आती हैं। जीवनभर जिस तिजोरी को सँभाला था उसकी कुंजियाँ दें जानी पड़ती है। कितना दुःख होगा ! जीवनभर जो चीजें सँभाल–सँभालकर मरे जा रहे थे वे सब की सब चीजें एक दिन, एक साथ किसी को दे जानी पड़ेगी। देने के योग्य कोई नहीं मिलता है फिर भी झख मार के दे जाना पड़ता है। चाहे घर हो, चाहे मकान हो, चाहे आश्रम हो, चाहे धन हो, चाहे कुछ भी हो। जीवनभर जिस शरीर को खिलाया पिलाया, नहलाया, घुमाया, फिराया उसको भी छोड़ जाना पड़ता है।

घटनाएँ तो घटती ही रहेंगी। तुम चाहे आत्म–साक्षात्कार कर लो, अरे ब्रह्माजी की तरह योग–सामर्थ्य से सृष्टि का सर्जन करने की ऊँचाई तक पहुँच जाओ फिर भी विपरीत परिस्थितियाँ तो आयेंगी ही।

एक बार ब्रह्माजी की भी भूल हो गई। शिवजी कुपित हो गये और शाप दे दिया कि तुम्हारी पूजा नहीं होगी। शिवजी ने ब्रह्मा जी का एक मस्तक काट दिया। ब्रह्मा जी चाहते तो वह मस्तक पुनः लगा सकते थे लेकिन वे साम्यावस्था में रहे ऐसा 'योगवाशिष्ठ' में आता है। अर्थात् परिस्थितियाँ चाहे आयें, जायें, बदलें परंतु तुम्हारी ज्ञानकला इतनी दृढ़ हो जाए कि चित्त समता के साम्राज्य पर आसीन रहे, तुम साम्यावस्था में डटे रहो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

सच्चा सुख क्या है ?

जो तुम्हारे दिल को चेतना देकर धड़कन दिलाता है, तुम्हारी आँखों को निहारने की शक्ति देता है, तुम्हारे कानों को सुनने की सत्ता देता है, तुम्हारी नासिका को सूँघने की सत्ता देता है और मन को संकल्प-विकल्प करने की स्फुरणा देता है उसे भरपूर स्नेह करो। तुम्हारी 'मैं....मैं...' जहाँ से स्फुरित होकर आ रही है उस उदगम स्थान को नहीं भी जानते हो फिर भी उसे धन्यवाद देते हुए स्नेह करो। यही सच्चा सुख, परमात्म-सुख प्राप्त करने की रीत है।

ऐसा करने से तुम्हारी संवित् वहीं पहुँचेगी जहाँ योगियों की संवित् पहुँचती है, जहाँ भक्तों की भाव संवित विश्रान्ति पाती है, तपस्वियों का तप जहाँ फलता है, ध्यानियों का ध्यान जहाँ से सिद्ध होता है और कर्मयोगियों को कर्म करने की सत्ता जहाँ से मिलती है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ